त्रैमासिक

प्रवेशांक

लाहौल अतीत के झरोखे से
ठाकुर शिव चन्द

चन्द्रताल

लाहुल-स्पिति की साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका

रू० 15.00

जुलाई-सितम्बर 1994

संस्मरण

और फिन्च दक्षिण की ओर उड़ गई।

कर्नल प्रेम चन्द

YOUR FRIEND IN HIGH HIMALAYAS

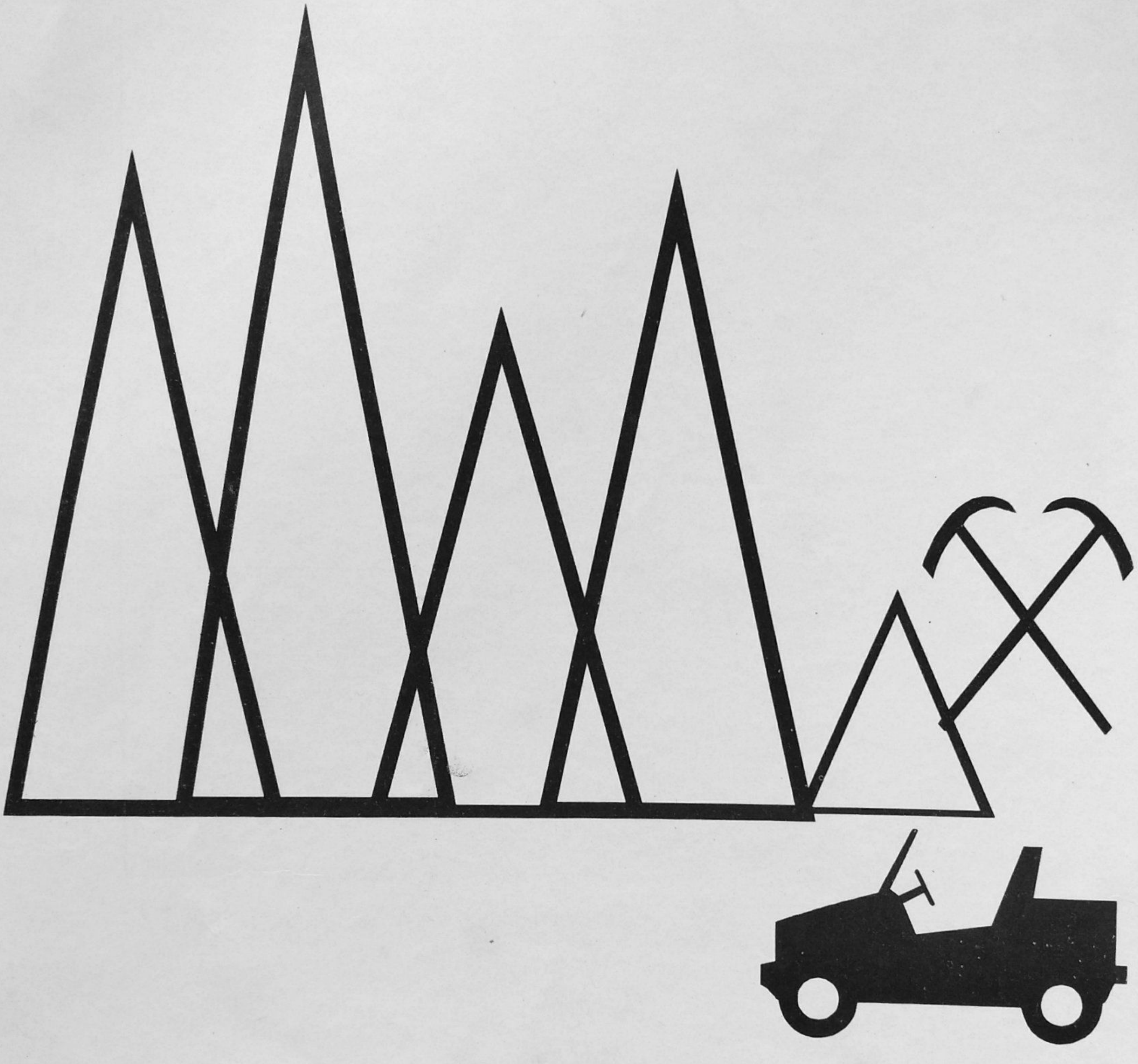

Himalayan Adventurers (P) Ltd.
Opposite Tourist Information Office
The Mall Manali - 175131 (H.P.) Phone : 2182
Cable Adventurers **Telex** : 3904-204 TREK IN

संस्थापक
स्वंगला एरतोग
लाहुल-स्पिति कला व संस्कृति उत्थान हेतू सोसाईटी (रजि०) संख्या ल स/42 /93

मुख्य संपादक
सुश्री डा० छिमे शाशनी

उप संपादक
बलदेव कृष्ण घरसंगी

संपादक मण्डल
के० अंगरूप लाहुली
आचार्य प्रेम सिंह
तोबदन,

सम्पर्क
मुख्य संपादक-चन्द्रताल
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कुल्लू (हि० प्र०)

उप संपादक-चन्द्रताल पोस्ट बाक्स 33 मनाली-175131 (हि० प्र०)

प्रकाशक एवं मुद्रक
श्री सतीश कुमार लोपा द्वारा 'स्वंगला एरतोग सोसाईटी (रजि०) के लिए **मॉर्डन स्टेशनर्स,** दुकान नं० 5, संकन गार्डन, शॉपिंग कॉम्पलैक्स मण्डी हि० प्र० द्वारा लेज़र टाईप सैटिंग व मुद्रित:- Ph. 22544

चन्द्रताल त्रैमासिक
वार्षिक शुल्क : पचास रूपये
एक प्रति : पन्द्रह रूपये

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनमें संपादकीय सहमती आवश्यक नहीं।

आवरण डिज़ाईन : घरसंगी
आवरण फोटो : बीरबल शर्मा

क्रम

कामना: **ज्ञान शाबला**

1. संपादकीय

कविता

3. बदलता दर्द: **अजेय**
4. विनाश : **कृष्ण ठाकुर**
23. याद : **राणा 'रवि'**

कहानी

5. सर्दियों की सुबह : **सतीश**

व्यंग्य

7. कहां खो गए सब फूल : **अजेय**

इतिहास प्रसंग

8. लाहौल, अतीत के झरोखे से : ठा० शिव चन्द
12. लाहौल, को मौरावियन मिशनरियों की देन : **तोबदन**

संस्मरण

13. और फिन्च दक्षिण की और उड़ गई। : कर्नल प्रेम चन्द

लोक गाथा

16. त्रिलोकनाथ यात्रा बनाम जातरा : के० अंगरूप लाहुली

समाज

18. लाहुल में संयुक्त परिवार की ढहती दीवारें : **छाया राम**

पर्यावरण

20. लाहौल घाटी में पारिस्थितिक संतुलन एंव पर्यावरण ह्रास : **सोनम अंगरूप**

पर्यटन

24. पर्यटन स्थल थान पट्टन : **जगतपाल शास्त्री**

कला

25. कला का स्वरूप व लाहौल में इस की स्थिति : सुख दास

संस्कृति

'योर' एक पर्व जोबरंग का : **सतीश चन्द्र 'बुगी'**

वाणिज्य

27. हॉप्स व्यापार का इतिहास : **अनुवाद घरसंगी**

संपादकीय

हिमाचल प्रदेश सांस्कृतिक-सम्पदा का अक्षुण्ण भण्डार है। जिस की हर बस्ती सांस्कृतिक गतिविधियों के रंग-मञ्च के रूप में सारे भारत में जानी जाती है। इस परम्परा की समृद्ध-विरासत में जन जातीय जनपद लाहौल एवं स्पिति अपनी अलग सी पहचान रखती है। विहंगम दृष्टिपात करें तो सीमावर्ति क्षेत्र होने के कारण दो संस्कृतियों के सम्मिश्रण की सी प्रतीति होती है। इसी लिए इस की सांस्कृतिक वैविध्यता बाहर वालों के लिए आश्चर्य चकित कर देने वाला आकर्षण रखती है।

देश की स्वतंत्रता के पश्चात् इस शताब्दी के पाँचवें और छटे दशक से इस ज़िला की दोनों घाटियों में शिक्षा की नई रोशनी ने प्रवेश किया और यहां से रूढ़िवादिता तथा थोड़ी बहुत कुरीतियों का अन्धकार धीरे - धीरे अपने आप छटने और हटने लगा। जन - जीवन की पुरानी पद्धति ने करवट लेनी शुरू की। उत्तरोत्तर निरन्तर उच्च शिक्षा के प्रसार से और नई-नई तकनीकी के प्रवेश से कृषकों को अपनी पारम्परिक कृषि व्यवसाय में अपनी जागरूकता एवं कर्मठता के अनुरूप सफलता मिली है। इस तरह यहां की आर्थिक - स्थिति सन्तोषजनक है। शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत उपलब्धि सब के सामने है।

परन्तु उपर्युक्त ग्रहण और परित्याग के संक्रान्ति-काल में बहुतसी बहुमूल्य, सांस्कृतिक -विरासत अनजाने में छूट गईं। सब से अधिक नई व्यावसायिक व्यस्तता के कारण वे परम्परायें या तो छोड़ दी गई या तोड़ दी गईं हैं। प्रगति की प्रारम्भिक दौड़ में संस्कृति के प्रतीकों को अनावश्यक समझा गया। धीरे-धीरे उच्च - शिक्षा, सेवा - कार्य तथा अनेक काम धन्धों के लिए अपने क्षेत्र से बाहर सम्पर्क रखना हमारे लिए अपरिहार्य अनिवार्यता थी भी और है भी। इस तरह वाह्य उन्नत समाज की जीवन- यात्रा के अतिरिक्त उन की सांस्कृतिक गतिविधियों को निकटता से देखने का जब जब सुअवसर मिला तो हमारी चेतना ने हमें जगा दिया और एहसास कराया कि हम क्या कुछ छोड़ आये हैं।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक पहुँचते पहुँचते हमारे बुद्धिजीवियों, शिक्षितों, विचारकों और चिन्तन शील व्यक्तियों ने ही नहीं प्रत्युत जन - साधारण ने भी अपनी अस्मिता, सांस्कृतिक - थाती और पहचान का एहसास करना शुरू कर दिया है। यदा कदा, जहां कहीं अनौपचारिक वार्ता-क्रम में लोगों की उक्त भावनायें व्यक्त होती देखने को मिलती रहती हैं। इस तरह एक वैचारिक वायु-मण्डल बनने लगता है तो कहीं न कहीं दबाव पड़ना और किसी न किसी का प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकना स्वाभाविक ही है। अन्ततोगत्वा हमारे कुछ चिन्तन शील और उत्साही नव - युवकों ने "स्वांगला - एरतोग" नामक संगठन गठित किया। जिस के उद्देश्य में क्षेत्र की व्यापक तथा अनेकानेक समस्याओं को इस की सीमा में बांधने का मन्तव्य रखा है। इन में एक महत्वपूर्ण मुद्दा पत्रिका का प्रकाशन करना भी है जो अभिव्यक्ति का सरल, सुलभ एवं सुंदर मन्च है।

पत्रिका लेखक तथा पाठक के मध्य विचारों का सम्प्रेषण सेतु है। साहित्य का वाहन बनना इस का मुख्य कर्म है। प्रस्तुत पत्रिका का लक्ष्य मुख्यतः लाहौल की विलुप्त हो रही

कामना

कर्म-शक्ति
बन कर,
मुग्ध, मन,
'रसिक' - बन कर-
सृजन का - विस्तार हो-
स्वस्थ- चित्त योग से!!
हम- तुम - सब,
मंगल, 'कलश'
से - स्वागत'' करें,
'चन्द्र ताल' का।
सद्भाव के पुष्प-
खिलते रहें-
सदैव, देश में!!!

ज्ञान शाबला

सांस्कृतिक धरोहरों (लोक गीत, लोक संगीत, लोक कलाएं, लोक कथा, तथा ग्राम्य उत्सव जैसे आयोजन) के प्रति सामान्य जन को सचेत करना एवं त्याज्य और ग्राह्य के बीच अन्तर कर सकने के विवेक को जागृत करना है; साथ ही अन्य हिमालयी संस्कृतियों का अवलोकन, साहित्यिक विकास के साथ-२ कृषि, पर्यावरण जैसे मुद्दों पर विचार करना भी है। लेखन कार्य में हमारी उपलब्धि शून्य के बराबर है। उन्नत समाज का मूल्यांकन उस के सूक्ष्म चिन्तन और जीवन दर्शन से होता है। नयी पौध को लेखन क्षेत्र मे स्वस्थ तथा प्रगतिशील बनाने के लिए पत्रिका उपजाऊ भूमि सिद्ध हो, इस की आशा आप लोगों की शुभ कामना और सहयोग के साथ करते हैं तथा अपने विचारों, अनुभवों, प्रेरणादायक संस्मरणों व लाहौल-स्पिति के लोक जीवन से सम्बद्ध विभिन्न प्रकार के विषयों में लेखन कार्य कर इस पुनीत अभियान में अपनी भागीदारी पर हस्ताक्षर बनें और आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा स्त्रोत। हम ने किसी प्रकार के पूर्वाग्रह के बिना निष्पक्ष हो कर स्तरीय तथा प्रकाशन योग्य विषयों का चयन किया है। पत्रिका को अधिक से अधिक रोचक बनाने के लिए विषयों की विविधता को यथा-स्थान देने का प्रयास किया है, यही मापदंड बनाए रखने का सिद्धान्त हम ने अपनाया है।

पत्रिका की आवश्यकता, इस के उद्देश्य, स्वरूप तथा प्रकाशन नियमों के दर्शाने के क्रम में इस का नाम बाद की पंक्तियों में पड़ जाने पर भी इस की महत्ता में कोई कमी नहीं आएगी। नामकरण तथा पंजीकरण एवं लम्बी प्रक्रिया से गुज़रने का काम नहीं होता तो पत्रिका बहुत पहले आप के हाथों - सम्मान पा जाती। निरन्तर पत्राचार के पश्चात् सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय भारत सरकार के सौजन्य से यहां से सुझाए नाम - तालिका में से ''चद्रताल'' नाम हमारी श्रद्धा-भावनाओं एवं स्थानीय पहचान के अनुरूप मिला है। क्यों कि लाहौल एवं स्पिति दोनों उपमंडलों की सीमा को दृढ़ता से जोड़ता हुआ मध्य में स्थित निर्मल, शीतल, अमृतमय जल से भरा प्रकृति का नील मणि मुकुर ताल ही ''चन्द्रताल'' है; । जिस प्रकार अमृत की एक बूंद से सारा सरोवर अमृतमय, गंगा के संग सारी कुसरितायें गंगा जैसी पवित्र हो जाती हैं। उसी प्रकार ''चन्द्रताल'' की एक छोटी सी कुलिया संग पाकर साथ में बहने वाली नदी 'चन्द्रा' बन कर अठखेलियां करती हुई तन्दी नामक स्थान पर भागा (नदी) से गले मिल कर एकाकार हो जाती है। संगम से आगे यौवन में मदमाती नदी को भी चन्द्रताल ने अपने नाम का पहला अक्षर चकार 'चनाव' नाम दिया। चन्द्रताल, चन्द्रा और चनाव की हमारे जीवन से भावात्मक घनिष्ठता सदा से ही रही है। इस प्रकार चन्द्रताल की धारा के पावन पुलिन में कई प्रेम कहानियों ने जन्म लिया ओर अमर हो गई। इन अमर प्रेम कहानियों से कहानी विद्या की श्री वृद्धि हुई है।

प्रस्तुत पत्रिका की रचना धारा में अनेक प्रतिभाओं को उभारने, सांस्कृतिक सम्मिश्रण में जनजातीय संस्कृति की चमक और चमत्कार को सर्वोपरि बनाए रखने तथा स्वच्छ एवं उच्च सृजन की आकांक्षाओं को पूरा करने में चन्द्रताल सरोवर की भांति 'चन्द्रताल पत्रिका' हिमालयवादी के लोगों में प्रिय बन जाए; यह हमारी आकांक्षा है। इस पत्रिका को आज आप सुधी पाठकों के हाथों में कुसुम-स्तबक सा रखते हुए रोमाञ्च और प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। साथ ही भयमिश्रित सिहरन की अनुभूति भी कम नहीं है कि हमारा यह प्रयास हास्यास्पद न हो जाए। लेकिन यह हमारा प्रथम प्रयास है। इस स्थिति को आत्मसात् कर सम्भाव्य त्रुटियों के सम्मार्जन के लिए विज्ञ महानुभावों से पूरी आशा है कि वे अपने उपयुक्त एवं मूल्यवान उपाय को सुझायें, अपनी प्रतिक्रिया लिखें तथा इस के परिष्कार और निखार में अपना सहयोग देकर हमें अनुगृहीत करें। □

प्रिय बन्धुओ,

'चन्द्रताल' आपकी अपनी पत्रिका है, इस का प्रथम अंक आपके हाथों में है। उन सभी पाठकों से जिनमें लेखकीय प्रतिभा है, जो स्वयं को अभिव्यक्त करना चाहते हैं, हमारा निवेदन है कि हमें अपनी रचनाएं निःसंकोच होकर भेजें। हर स्तर के लेखकों को हम आत्मसात् करने का प्रयत्न करेंगे।

'चन्द्रताल' में प्रकाशित लेखों और रचनाओं के बारे में आप क्या सोचते हैं, यह जानना हमारे लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ताकि इसे आप सब के लिए और अधिक सुरूचिपूर्ण बनाया जा सके। अपनी प्रतिक्रिया से हमें अवश्य-२ अवगत कराएं। चुने हुए पत्रों को पत्रिका के पाठकीय पृष्ट पर स्थान दिया जाएगा!

संपादक

बदलता दर्द

बाज़ार में किसी रेस्त्रां में
किसी टेबल पर
अकेले गुनगुने कॉफी के साथ
एक कप दर्द पी लेता हूं
हर शाम एक मृत्यु जी लेता हूं।
यादें, बातें,
प्यार, जिन्दगी, मुस्कान
शोर, खामोशी गुस्सा.......
सब झक मारते हैं मुझे
खींचते आगे - पीछे, ऊपर - नीचे।
पड़ा नहीं रहने देते
किसी कोने में चुपचाप
जहां अकेले गुज़ार सकूं
सन्नाटे को समर्पित कुछ क्षण।
जहां और कुछ नहीं
तो देख सकूं सपने ही
शीतल पूर्णिमा के।
गीले बादलों के।
और धो सकूं उन गीले सपनों से
जिन्दगी की सारी छटपटाहट।

याद

किसी अखबार के उपेक्षित कोने पर
छपी इश्तेहारी तस्वीर
याद दिला ही देती है, तुम्हारी
और बीते दिनों की जब मैं स्वस्थ था,
चहकता, खुश फहम-
कि मैं बहुत कुछ कर सकता था।

बात

बात कब हुई हमारे बीच?
तुम एक बात दोहराते रहे
मैं अपनी एक बात रटता रहा
तुम अपने किनारे पहुंच गए
और मैं अपने....
किसी ने किसी को सुना ही नहीं
बात कब हुई?

प्यार

यह तुम्हीं हो
जो बन्धनों को नहीं मानते
लेकिन अनायास बांध लेते हो-
प्यार, तुझ में यह विरोध क्यों?
जिन्दगी-
जानता हूं,
तुम छलावा हो
फिर भी तुम्हें चाहने लगा हूं
जिन्दगी, जाने क्यों
तुम से मोह सा हो गया है।

मुस्कान

पूरी ज़िन्दगी में
क्या हो पाता है
हम से
सिवा एक संक्षिप्त मुस्कान के
खुल कर रो भी तो नहीं पाते।

शोर

मैंने कभी शोर नहीं चाहा
हमेशा चुप रहा मैं
फिर भी एक जानवर
मेरे भीतर लगातार चीखता रहा
और मैं तुम्हारी पुकार न सुन पाया।

खामोशी

तुम्हारी आड़ में
एक पाप पनपता है
पल - प्रतिपल, धीरे-धीरे..........
जितना कायर, उतना घातक।

गुस्सा

क्यों छिप जाते हो सहसा!
एक बार खुल कर प्रकटो
तुम्हारा ज़हर देखूंगा
कि अब कोई नशा असर नहीं करता।
क्यों देख लेता हूं
वह सब, जो नहीं देखना चाहिए
और छट पटाता रह जाता हूं
कि जाने किस लिए किस तरह
कहां से बंधा हूं।
कठ पुतली
कौन चला रहा मुझे?
कांपते हैं हाथ, नसें उभर आतीं
बेबस हो जाता है मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व।
क्यों नहीं नथुनों से खून उबल आता!
क्यों टूट नहीं जाती अंतड़ियां।
धमनियां क्यों फट नहीं पडती?!!
दर्द, पहले तो ऐसे न थे तुम।
जब मैं चाहता, तभी उठते थे- मेरे साथ
तुम भी बदल रहे हो क्या?
लफंगों और फुकरों की गली में
किसी सरकारी अहाते में
किसी रस्सी की खाट पर
सस्ती भूजिया और पकोड़ियों के साथ
एक पव्वा दर्द पी लेता हूं,
हर शाम एक मृत्यु जी लेता हूं। □

अजेय

विनाश

उच्चतम से निम्नतम में
अणु से परमाणु में,
पल - पल
क्षण - क्षण
परिवर्तित हो रही,
विनाश निर्विघ्न हो रही
यह पर्वत श्रृखलाएँ।
सभ्यताएँ
मनु की प्राचीनतम,
आज की आधुनिकतम,
पल - पल
क्षण - क्षण
उच्चत्तम से निम्नतम में,
सूक्ष्म से सूक्ष्मतम में,
मानवता को खो रही,
विनाश निर्विघ्न हो रही,
यह मानव सभ्यताएँ। □

कृष्ण ठाकुर

सर्दियों की वह सुबह

सतीश कुमार लोप्पा

तीन दिनों तक भारी हिमपात के बाद आज आसमान एक दम साफ हो गया है। जहां तक भी नज़र जाती है एक नीली सी शुभ्र आभा व्याप्त है। पहाड़ों की नुकीली चोटियों पर टिका आसमान विशाल-विस्तृत नीले स्फटिक सा लग रहा है। पूर्व की ओर उठते ही आंखे अनायास सिकुड़ जाती हैं। पार पहाड़ की दक्षिणी चोटियों पर सूर्य की पीताभ किरणें चार इन्च नीचे उतर चुकी हैं। हवा नहीं है पर ठंड बहुत तेज़ है। बेली और पॉपलर के पेड़ सब नतमस्तक हैं जैसे बुढ़ा गए हों।

अड़सठ वर्षीय सोनम अपने नेपाली नौकर राम बहादुर जिसे सभी 'भादर' कहते हैं, के साथ छत पर लकड़ी का बेलचा लिए बर्फ फैंकने निकला। दोनों ने छत के साथ एक कोने से बर्फ फैंकना शुरू कर दिया। बर्फ काफी था, करीब दो हाथ! चौरस कटे बर्फ को भादर दो बार (दो ख्रब कर) में फैंक रहा था और सोनम को तीन बार में फैंकना पड़ रहा था, उसकी कमर जो दुखती है। छत पर आते ही उस की नाक पर पानी की एक बूंद न जाने कहां से आकर अटक गई जिसे झटक देने की जरूरत उसने नहीं समझी। कुछ कुछ देर पर बर्फ फैंकने के कारण लगने वाले झटके से वह खुद- ब- खुद गिर जाती और क्षण भर में फिर एक और बूंद कहीं से आ कर अटक जाती। बन्दर छाप टोपी पहनने के बावजूद कानों पर हल्की-हल्की चुभन महसूस हो रही थी।

'तन्दूर' की पाईप से अब पहले से अधिक धुआं उठने लगा। भादर अपने दोनों हाथ पाईप के धुंए पर सेक रहा था। सोनम ने कहा, मत रे, सेंकने पर और ठंड लगेगी, बर्फ फैंकते जाओ हाथ-पैर गर्म हो जाएंगे। भादर फिर बर्फ फैंकने लगा। हर तरफ 'ध्रिप्प- ध्रिप्प' की आवाज़ें सुनाई दे रहीं थीं। गांव के प्रत्येक छत पर लोग बर्फ फैंकने में व्यस्त थे। सूर्य की किरणें छत पर पहुंच गईं थीं। भादर ने अपना चमकीला काला चश्मा निकाल लिया। सोनम की आंखें नहीं चुंधियाती हैं, उम्र के साथ बालों की ही तरह उसकी आंखें भी पक गईं हैं। धूप निकल आने पर सोनम की नाक से मोतियों का झड़ना कम हो गया और कानों को भी राहत मिली। हां हाथ अलबत्ता पहले ही काफी गर्म हो चुके थे।

आधी छत खत्म करते करते धूप काफी चढ़ आई। नीचे से बुढ़िया की आवाज सुनाई दी, भादर ओऽऽ- भादर! आ कर खाना खा लो, बहुत देर हो गई है, अभी तक गाय-भेड़ों को घास तक नहीं दे सकी हूं, जल्दी आओ। दोनों लोग छत से उतरे और भोजन के लिए मुंह हाथ धो कर भीतर आ गए। बुढ़िया लंगड़ाती हुई उठी और दोनों को मीठी चाय की प्यालियां भर दी। तीन चार कप चाय पी चुकने पर दोनों तृप्त हुए। बुढ़िया को गठिया है, ठंड के कारण वह और अधिक कष्ठ कारक बन गया है। फिर भी चूल्हा - चौका तो उसे संभालना ही पड़ता है। उम्र में वह सोनम से दो चार साल बड़ी ही होगी। घुटनों को, जिनपर दो बड़े-बड़े पेबन्द लगे थे, सहलाती हुई कहने लगी, अब की बर्फ बहुत पड़ी है, तुम दोनों के लिए बड़ी मुश्किल हो गई, दिन भर लग जाओगे।

हां री, सोनम हुक्का गुड़गुड़ाता हुआ बोला, इतना बड़ा घर बना कर क्या आराम मिला, दो ही जीव तो हैं, और एक यह भादर! इतना बड़ा घर का छत, दो घरों के जितना है, उधर 'छनि'; (गौशाला) का छत, घोप (शौचालय) का छत और यह आंगन! बर्फ फैंकते-फैंकते, प्राण खुश्क हो जाते हैं। जी तो चाहता है अगली गर्मियों मे टीन की छप्पर लगवा दूं; लकड़िया लाना भी बहुत मुश्किल हो गया है, और फिर अकेला मैं कहां तो कहां पहुंचता फिरूं! अच्छा, अब जल्दी से 'थुकपा' निकालो, वर्ना शाम तक भी खत्म न हो।

तभी हेलीकॉप्टर के उड़ने की आवाज़ कानों से टकराई। सोनम ने खिड़की से झांक कर देखा, बड़ा है, सवारियों वाला लगता है। चार दिनों से उड़ान नहीं हुई है। आज जा के साफ हुआ है आसमान। अजीब इत्तफाक है, जब भी हेलीकॉप्टर की बारी होती है जरूर मौसम खराब हो जाता है पता नहीं दोनों का क्या योग है।

बुढ़िया थुकपा के साथ सत्तू का नमकीन हलवा 'दू' परोस देती है। और थुकपा खुद निकाल लेना, कह कर बुढ़िया लंगड़ाती हुई गौशाला की ओर चल दी। दोनों व्यक्ति खा पी कर फिर से छत पर बर्फ फैंकने में जुट गए। कुछ देर बाद गांव का एक युवक लकड़ी का बेलचा लिए बूढ़े सोनम की मदद के लिए छत पर आ पहुंचा। युवक काफी जीवत वाला था। काम में गति आने लगी। इस बीच पड़ौस का एक और भी युवक आ गया। तीनों इधर-उधर की बातें करने लगे। बीच-बीच में भादर भी अटपटे से लेहजे में बातें कर

लेता। दो वर्षों में वह भी लाहुल की बोली काफी कुछ सीख गया था। सोनम कह रहा था, आज बड़ा हेलीकॉप्टर आया है न! पिछली बार हमारे राम लाल बेटे का पत्र आया था। लिखा है बच्चे हमें याद करते हैं। गर्मियों में आए थे पांच एक दिन के लिए।

एक युवक ने बेलचे में बर्फ उठाते हुए पूछा, वे तो शिमला में ही हैं न?

हां हां, वहीं हैं, वन विभाग में अतिरिक्त सचिव हो गए हैं। और हां, तुम्हारे बड़े भैया का कोई पत्र वगैरा तो आया होगा न? सोनम ने युवक की ओर गर्दन घुमाते हुए पूछा। जी चाचा, उस की तबदीली चण्डीगढ़ से बम्बई हो गई है।

अच्छा, बम्बई चले गए, बड़ा दूर भेज दिया, सोनम बोला। और वह हमारा फौजी है न उस की भी बदली नागालैंड से पठान कोट हो गई है। उस का भी पत्र मिला था पिछले हेलीकॉप्टर से! घर नहीं आए अब तीसरा साल हो रहा है। अफसर क्या बना, घर का रास्ता भूल गया।

दूसरे युवक ने कमर सीधी करते हुए प्रश्न किया, अमर लाल अभी पढ़ ही रहा है या कहीं नौकरी पर लग गया है?

अमर लाल? उसे भी कई पत्र लिखे मैंने पर कोई उत्तर ही नहीं देता, सोनम अपनी रो में कहे जा रहा था, हमारी याद उसे तभी आती है जब पैसे खत्म हो जाते हैं बस तार दे देगा, एक लाईन का। तीन साल से पंजाब विश्वविद्यालय में है, पता नहीं क्या कर रहा है, कहता है अभी आगे पढ़ना है। यहां हमारी हड्डीयाँ भी पिस रही हैं काम कर कर के। मैं तो कहता हूं पढ़ाई खत्म कर यहां घर संभालो। दो भाई नौकरी पर हैं, दो बहनें थी, वे भी चली गईं। कोई तो चाहिए जो घर द्वार जिमीं- भूमि संभाले। कब तक हम दो यह बोझ उठाते रहेंगे, आखिर हम भी तो बुढ़ा गए हैं। तुम्हें तो मालूम है, जमींदारी में भी आज ऐसी कमी नहीं है, मटर है, आलू है, होप्स है, गुज़ारा तो हो ही जाता है। और यह मां का लाल है कि कहता है अभी आगे पढ़ेगा, पता नहीं क्या करेगा! सोनम नेएक आह भरी और चुप हो गया।

दोपहर तक छत साफ हो गया और चारों लोग 'छनि' के छत पर चढ़ गए और बर्फ फैंकने में जुटे रहे। उसे खत्म कर के वे भोजन के लिए भीतर आ गए। बुढ़िया ने राजमाह और चावल भरपेट खिला कर मदद के लिए आए युवकों का आभार व्यक्त किया। सोनम भी सर हिलाता हुआ बोला तुम लोगों को हमारे कारण हर बार तकलीफ उठानी पड़ती है। युवकों ने मुस्कुराते हुए कहा, अरे नहीं चाचा, ऐसी कोई बात नहीं, गांव की बात है गांव वाले काम न आएं तो----! युवकों ने विदा ली। भादर आंगन में बर्फ हटाने लगा। सोनम काफी थक गया था, वह देर तक पीठ के बल लेटा रहा। बीच में तम्बाकू की तलब हुई, पर उठने की हिम्मत नहीं हुई। कमर सीधी करते न बनती थी। बुढ़िया गांधी चरखे पर ऊन कातती रही।

उस रात सोनम ने अजीब सा सपना देखा। उसके दोनों बेटे सपरिवार घर आए हैं। पूरा कुनवा बड़े प्यार से आपस में बतिया रहा है, बच्चे आंगन में खेल रहे है। अमर बाहें चढ़ाए खेती के कामों में बड़े जोश के साथ मसरूफ है और खेती - बाड़ी में नए तजुर्बे कर रहा है। फिर उस ने देखा कि सारी धाटी में धुआं सा छा रहा है। घर के भीतर भी सफेद धुआं सा भरने लगा, उसे कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। अब बच्चों का शोर भी नहीं सुनाई दे रहा था, कोई बतिया भी नहीं रहा था। धीरे - धीरे धुंध छंटने लगा। गांव कुछ बदला बदला सा दिख रहा था। गांव में बूढ़े-बूढ़ियां ही अधिक दिखाई देने लगीं, युवक इने गिने ही रह गए। उसके बेटे, पोते-पोतियां भी न जाने कहां चली गईं। बुढ़िया जोड़ों के दर्द के कारण बिस्तर पर कराह रही थी। सोनम को लगा जैसे उसका दम घुट रहा है, उसे मूर्छा आ रही है और वह मृत्यु की ओर बढ़ रहा है। नेपाली नौकर उसे बांह से पकड़ कर सहारा दे रहा है। भादर को पास देख कर दंश की तरह यह विचार उस के मन में आया, पांच पांच बच्चों का बाप होने के बावजूद आज मृत्यु के समय पानी देने को भी कोई पास नहीं। वाह री किस्मत! आज मेरी अर्थी को कन्धा भी यह भादर देगा! और मेरी चिता को अग्नि भी यही भादर देगां वह सिसकने लगा।

तभी बुढ़िया की तेज़ आवाज़ कानों में पड़ी। अरे बुढ़ऊ, उठो भी! सूरज चढ़ आया है, क्या सोते ही रहोगे आज? वह उठ बैठा, फिर भीतर जा कर हुक्का भर लाया और डेहरी पर बैठा गहरे गहरे कश ले कर गुड़गुड़ाने लगा। नज़र सफेद शून्य मेंएक टक लगी थी जैसे कुछ बहुमूल्य खो गया हो! □

तृषा

– सतीश ओप्पा

पाषाण के वक्ष में

निर्मल नीर ढूंढता हूं

हिम के अन्तस में

अलाव का ताव ढूंढता हूं

हेमन्त के अंक में

नव कोंपलें ढूंढता हूं।

चील के घोंसले में

कदाचित मांस ढूंढता हूं □

SK.

कहां खो गए सब फूल?

अजेय

सुना है आर्थिक विकास और शिक्षा के प्रचार प्रसार से पहले लाहुल में अनेक प्रकर के फूल खिला करते थे। जंगली और खूबसूरत! ये रंग-बिरंगे मनमोहक फूल खिलते तो आज भी हैं लेकिन आलू, मटर, और हॉप्स के भाव बढ़ जाने के कारण इन जंगली फूलों को कोई लिफ्ट ही नहीं देता। इन तीनों के अलावा फूलों की एक चौथी किस्म भी है लेकिन उसे फूल कहना फूल का अपमान करना होगा, अत: उस का ज़िक्र फिलहाल न ही किया जाए तो बेहतर है।

बहरहाल, ये जो तीन चार किस्म के महत्वपूर्ण फूल हैं, इन की दुर्दशा पर जितना भी रोया जाए कम है। आलू के फूल को ही लीजिए उसके मन भावन सफेद और बैंगनी रंगों पर किसी भंवरे या तितली का दिल तो क्यों आने लगा मुफ्त में, मच्छर टाईप जन्तू भी उसे फिल्टर करने के चक्कर में रहते हैं। रही आदमी की बात, वह प्राचीन काल से ही उस के बनिये की तोंद सी मुटियाई हुई भूमिगत स्टेम ट्यूबर पर फिदा है। फूलों से उसे क्या लेना देना? बेचारा आलू का फूल! इस तरह की उपेक्षा और घोर तिरस्कार झेलने वाला शायद यह सृष्टि का एक मात्र फूल होगा। निराला जीवित होते तो रूंधे गले से, छाती तान कर, अपने सम्पूर्ण पौरुष के साथ चिंघाड़ उठते -

"हा सुमन! धिक् तुम्हारा जीवन!
फल बनने के भी नहीं रहे अधिकारी''

मटर के फूल को अपेक्षाकृत सौभाग्य शाली समझना चाहिए। क्योंकि इस पर भंवरे भी मंडराते हैं और तितलियां भी अत: इसे फल बनने के अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन यह उन प्रचंड रासायिनिक छिड़कावों की भीनी-भीनी महक का भी हकदार है जो पहले साप्ताहिक हुआ करते थे, अब लगभग दैनिक होने लगे हैं और आदमी भी चलो कभी कभार एक-आध कृपा दृष्टि इस पर डाल ही देता है कि पैदावार का अन्दाज़ा लग जाए। कितनी फलियां निकलेंगी? एक फली में कितने दानें होंगे? वैसे भी मटर के मामले में आधुनिक आदमी का सौन्दर्य बोध कुछ अधिक ही दमदार है-

न जाने क्यों
तुम मटर के दानों सी हो?
सूख कर फली चटखी नहीं
कि सौन्दर्य टर्रर्रर्र - से
डाईनिंग टेबल पर बिखर गया।

फिर, मार्केट कैसा चला है? खुद ले जाऊं या व्यापारी को दूँ किस व्यापारी को देने से अधिक प्रॉफिट है? क्यों न खेत ही ठेके पर दे दूं? सारा झंझट खत्म। इस उधेड़ बुन में बेचारा फूल बहूत पीछे छूट जाता है और ठेका बन जाता है।

और यह है लाहुली जन मानस का लेटेस्ट क्रेज़! अथाह कमर्शियल संभावनाओं वाला एक नशीला फूल! लाहुल के जवां बेरोज़गार दिलों की धड़कन! जिस की 'एन्ट्री' इतनी धमाके दार और विस्फोटक हो उस का 'एन्ड' न जाने कैसा होगा? इसे न भंवरों और तितलियों की जरूरत है न फल बनने की कामना। यह फूल है, इतना ही काफी है। इसके लिए फूल होने में ही इस की चरम उपलब्धि है। इस फल का नाम "हॉप्स'' है, लेकिन प्यार से (या उच्चारण दोष से ग्रस्त होकर) लोग उसे "होप्स'' पुकारते हैं। "होप्स', यानि उम्मीदें! "होप्स'', यानि मुर्दा धमनियों में जीवन का संचार! खिलने से लेकर पकने तक इस फूल की जितनी देख भाल होती है उतनी क्या ही किसी इकलौती राजकन्या की होती होगी। शहंशाही ठाठ से जीने वाले इस फूल को भला क्या दु:ख हो सकता है? लेकिन यह हमारा वहम है। कोई फूल सुखी नहीं हो सकता। हॉप्स भी नहीं। उसकी शिकायत यह है कि उसके सौन्दर्य का माप दंड उस का वज़न है। यानि, जो भारी, वही सुंदर। पकते ही इस फूल की दर्द भरी कहानी शुरू हो जाती है। सब से पहले उसे डाल से टूटना पड़ता है, फिर तराजुओं मे तुलना पड़ता है, गरम भट्ठियों में तपना पड़ता है, मशीनों में दबना पड़ता है, उसके बाद एक बड़ी सी थैली में सील मुहर बन्द होकर उसे बड़े कारखानों में जाना पड़ता है। वहां उसके का क्या हश्र होता है यह तो फूल जाने और उस का भगवान। लेकिन इतना पक्का है कि अपनी व्यथा सुनाने के लिए उसका कोई भी हिस्सा साबुत नहीं बचता। कुल मिलाकर हॉप्स के फूल की कहानी भरतीय नारी की दर्द भरी कहानी से मिलती जुलती है।

यह तो हुई तीन प्रमुख किस्मों की बात। इन तीनों की शोचनीय स्थिति से प्रभावित और प्रेरित होकर मैंने फैंसला किया है कि मैं अब चौथी किस्म के बारे भी कुछ लिख ही डालूं। कवियों ने इसे कभी फूल नहीं

शेष पृष्ठ 11 पर

लाहौल-स्पिति अतीत के झरोखे से

शिव चन्द ठाकुर

लाहुल के गौरवमय इतिहास के दो सपूत जिन पर लाहुल को गर्व है

"घबरा न अंधेरे में शबे गम के मुसाफिर,

तेरे लिए बेताब है अगोशे सहर,

अगर शामिल न हो किस्सा हमारा,

तुम्हारी दास्ता कुछ भी नहीं है।

पस्त हिम्मत वह है जो राहे शोक में रह गए,

हौसले वाले के आगे दूर कुछ मंजिल नहीं !''

लाहौल-स्पिति प्याली नुमा वादी चन्द्रभागा नदी और विभिन्न नालों से घिरा हुआ: फौजी नुक्ता निगाह से, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आर्थिक दृष्टि से हिमाचल में एक गौरवपूर्ण स्थान रखता है। यहां के लोग अपनी वेशभूषा, खान-पान, बोली और परिश्रमी प्रकृति के कारण ही अलग पहचान बनाए हुए हैं। इसे कई नामों से पुकारा जाता है- गरजा खंडोलिंग (शूरवीरो की भूमि), लायूल (देवताओं की घाटी) स्वांगला (आर्यों की घाटी)। लाहौल-स्पिति के अतीत के इतिहास पर दृष्टिपात करने से अनेक तथ्य सामने आते हैं।

(1) ऐसा माना जाता है कि पांडव परिवार अपने आखिरी समय में लाहौल के रास्ते से कश्तवार होते हुए काश्मीर गए थे, इस के अवशेष आज भी उदयपुर आदि स्थानों में विद्यमान हैं।

(2) राजा घेपन के रिवायती कहावत के अनुसार वे यारकंद से अपने बजीर बोटी को लेकर शाशन गांव में क्यामवजीर हुए। और लाहौल वासियों के लिए एक खोखले डंडे के अन्दर मीठा (फुलाड़ी) और काठू के बीज लाये।

(3) गुरू रिम्बोचे (आचार्य पद्मा सम्भव) आठवीं सदी में लाहौल पधारे, बुद्धमत का प्रचार किया और गुरु घंटाल की स्थापना की।

(4) महान देश भक्त और क्रान्तिकारी रास बिहरी बोस लार्ड हार्डिंग पर बम फैंकने के बाद भूमिगत होने देहली से रोहतांग पार कर लाहौल आए तथा तीन महीने बाबू टुकटुक (जो पोस्ट मास्टर थे) के घर रहें, वहां ठहरने का लक्ष्य पत्र व अखबारों के माध्यम् से सरकारी क्रियाओं से अवगत होना था। जब उन्हें मालूम हुआ कि गुप्तचर विभाग उन के बारे जानने और उन तक पहुंचने का प्रयास कर रही है तो उन्होंने तिब्बत के दुर्गम पहाड़ी रास्ते को पैदल पार कर हांगकांग और जापान पहुंचना मुनासिब समझा; वहां पहुचं कर उन्होंने महान पुरुष नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के साथ मिल कर मातृ भूमि की आज़ादी हासिल करने के लए इंडियन नेशनल आर्मी (I.N.A.) कही नींव रखी ताकि मातृ भूमि के अंग्रेजों की अधीनता से मुक्ति दिलाई जाए। उन के केलंग पधारने की स्मृति में उन का बुत आज भी केलंग में विद्यमान है।

अब मैं लाहौल के उस अतीत की ओर पाठकों का ध्यान दिलाना मुनासिब समझता हूं जिस से यह पता चले कि किसी समय की शूरवीरों की यह भूमि किस तरह गुरबत,

जहालत, तवममात और बीमारी का गहवारा बना रहा। मेरा लक्ष्य तत्कालीन लाहौल के आर्थिक, सामाजिक शैक्षिक और राजनैतिक स्थिति को दर्शाना है। 1947 से पहले लाहौल -स्पीति की स्थिति ना गुफताबे थी। आर्थिक तौर पर पिछड़ा हुआ था, आय के साधन सिवाय कुठ के (जो। 1935 के बाद की उपज है) बिल्कुल नामूद रहा। लोग उदरपूर्ति के लिए सर्दियों मे कुल्लू और मैदानी ईलाकों की ओर रोज़गार की तलाश में भटकते फिरते थे। मनाली से लाहौल - स्पिति बरास्ता (बाया) रोहतांग और कुंजोम दर्रा खच्चर रोड़ ही था। लोग भेड़, बकरियों और घोड़े, खच्चर पर लाद कर सर्दियों के छः महीने के लिए इकट्ठे राशन लाते थे, इस प्रकार लाहौल - स्पीति वाले एस्कीमों जैसी जिन्दगी बसर करते थे। - भारी हिमपात शिद्दत की सर्दी के कारण छः महीने अन्य क्षेत्रों से बिल्कुल कटे। शिक्षा की दृष्टि से भी लोग बहुत पिछड़े हुए थे; सिर्फ एक मिडल स्कूल केलंग में और एक लोअर मिडल स्कूल लोट और एक काज़ा में था; वह भी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के ज़ेरेकियादत था। लाहौल - स्पीति को तत्कालीन पंजाब के यूनियनिस्ट सरकार ने गैर ज़राइत पेशा घोषित किया था, जिस की रूह से लाहौल - स्पिति निवासी न कुल्लू और न अन्य जगह जमीन खरीद सकते थे। अलबत्ता गर्वनमेंट ऑफ इंडिया के एक्ट 1955 के तहत लाहौल - स्पिति को Excluded Area घोषित किया गया था, जिससे विकास कार्य बिल्कुल ठप्प पड़ा था। बेगार सिस्टम जारी था, बुजुर्ग लोग बताते हैं कि केलंग से रामशिला तब प्रति कुल्ली आठ आने दिया जाता था, जागृति के अभाव के कारण लोग यह सब सह रहे थे ऐसी स्थिति मे हम दोनों (ठाकुर देवी सिंह और ठाकुर शिव चन्द, लाहौल के प्रथम स्नातक) ने उन हालात को देख कर ईलाके के विकास के लिए, लोगों में जागृति और चेतना जगाने के लिए उस वक्त के लाहौल -स्पिति के बारसूक अश्खास से सम्पर्क कर के 'लाहौल -स्पिति पीपल्ज़ एसोसियेशन' नामक एक अदारा की 1947 में स्थापना की जो बाद में एक शक्ति शाली संस्था के रूप में उभर पड़ा, आज़ादी के बाद उत्पन्न हमारी पीढ़ी को शायद इस की जानकारी न हो इसीलिए इस कामयाबी की कहानी, जो एक जद्दोजहद की कहानी है, को उन लोगों तक पहुंचने का प्रयास कर रहा हूं।

मनुष्य का इतिहास सदा संघर्ष का इतिहास रहा है, मनुष्य ने इतिहास के हर युग में संसार के हर कोने में जुल्मो सितम, ज़बर व तशद्दुद, ना बराबरी, गरीबी, बेकारी भुखमरी के विरुद्ध सदा जबर दस्त जद्दोजहद किया, कुर्बानी दी। संघर्ष ने कभी धीमे गति से, कभी - उग्र रूप धारण कर के ज्वालामुखी की शक्ल अख्तियार की। उदाहरणार्थ 1917 में रूसी ज़ार के जुल्मो सितम के विरुद्ध बालश्विक इन्कलाब ने जन्म लिया। 1789 में फ्रांस में समानता, स्वतन्त्रता, भाईचारा का नारा गूंज उठा जिस ने तख्तोताज को हिला कर रख दिया और इंग्लैंड का औद्योगिक क्रान्ति जिसने उन देशों की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन में हंगामा खेज़ परिवर्तन ला दी। भारतवर्ष में भी यद्यपि आज़ादी की चिंगारी 1857 में सुलगी थी मगर चालाक अंग्रेज़ी शासकों ने अपनी कूटनीति के कारण आरज़ी तौर पर दमन चक्र चला कर इस तहरीक को दबा दी, मगर भारत के बेदार मगज, आज़ादी के परवानों व कोमी रहनुमाओं के दिलों के अन्दर इस आग में धीरे-धीरे चिंगारी की शक्ल लेना शुरू किया और अन्त में 1947 में भारत आज़ाद हुआ। आज़ादी की लड़ाई के दौरान की घटना जिस ने हम दोनों के जीवन में परिवर्तन ला दिया, का यहां जिक्र करना मैं उचित समझता हूं। 1942 में हम दोनों डी० ए० वी० कॉलेज लाहौर के 12वीं कक्षा के छात्र थे, उस समय भारत छोड़ो आन्दोलन का नेताओं ने, आह्वान किया था। हमारे कॉलिज के छात्र भी उस आन्दोलन में शरीक हुए, अंग्रेजों भारत छोड़ो का नारा बुलन्द करते लाहौर के गोल बाग होते हुए अनारकली बाजार की ओर कूच कर रहे थे कि एक अंग्रेज सर्जिट ने पुलिस का एक जत्था लेकर बगैर वार्निंग दिए हम कॉलेज के छात्रों की बुरी तरह मार पीट की और लाठी के प्रहार से हम तितर बितर हो गए। इस घटना ने हम दोनों के दिलों में हलचल पैदा कर दी और उसदिन से हम दोनों ने दृढ़ निश्चय किया एक अजम उठाया कि आईंदा जिन्दगी में जब भी अवसर मिले अपने देश, अपने ईलाके के लिए अपनी जान की कुर्बानी देंगे।

वक्त और तूफान किसी की इन्तजारी किए बगैर गुज़र जाते हैं। इसी तरह वक्त गुज़रता गया और हम दोनों ने 1944 में ग्रेजूएशन कर ली। इसी दौरान हम दोनों ने लाहौर में आर्डिनेन्स फेक्टरी में कुछ अर्सा काम भी किया, उस के बाद हम दोनों लाहौल-वापिस आ गए तथा 1947 में पूर्वोक्त संस्था की स्थापना की। उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम फसाद जोरों पर था और मुस्लमान कुल्लू से भाग कर लाहौल, लाहौल से लद्दाख और लद्दाख से गिलगित, अस्कर, कारगिल की ओर जाते हुए उधम मचा रहे थे। उन से लाहौल निवासियों के जान माल की सुरक्षा के लिए इस संस्था एक अन्तर्गतहम ने ठिकरी पहरा (प्रत्येक गांव में बारी-बारी से लोगों द्वारा पहरा देना) लगवाया और नेशनल वॉल्टियर फोर्स के लिए सरकार से अर्ज कर लोगों को राईफल चलाने का प्रशिक्षरण दिया ताकि लोग अपनी रक्षा स्वयं कर सकें। इसी दौरान कुछ बुद्धिजीवी लोग (ठाकुर देवी सिंह, ठाकुर प्रताप चन्द, ठाकुर प्रेमचन्द, पं० बसन्त राम, श्री सोमदेव, श्री लालचंद, मुंशी सज्जेराम, ठाकुर निहाल चन्द, स्पिति के नोनों टशी नमज्ञाल, श्री छेटुग (पिनवेली) तथा स्वयं मैं इस सोच विचार में डूबे रहते थे कि किस तरह से लाहौल

-स्पिति को विकास के पथ पर लाया जाए, आरक्षण मिले और संवैधानिक तौर पर जनजाति घोषित किया जाए। उन दिनों संविधान बनाया जा रहा था, अतः हम लोगों ने तत्कालीन प्रधान मंत्री पंडित नेहरू को लाहौल-स्पिति को जनजातीय क्षेत्र व वहां के निवासियों को जनजाति घोषित करने के लिए ज्ञापन दी, तार भेजी। जिस के उत्तर में भारत सरकार ने लाहौल-स्पिति के प्रतिनिधियों को दिल्ली आने का निमन्त्रण दिया और कान्सटीच्यूशन हाऊस कर्ज़न रोड़ के रूम नं० 81 में ठहरने की व्यवस्था की। हमारे प्रतिनिधि (ठाकुर देवी सिंह, मुंशी सजेराम, पं० बसन्तराम और मैं) दिल्ली की ओर रवाना हुए, परन्तु फसाद के कारण रास्ता अवरूद्ध था अतः मण्डी से ही हमें वापिस आना पड़ा, पुनः तार द्वारा हमारे प्रतिनिधियों को निमन्त्रित किया गया, लेकिन इस बार भी दंगाफसाद के कारण जा नहीं पाये। अंत में 1948 में मई के अन्तिम सप्ताह हमारा वफद (Deputation) दिल्ली रवाना हुए। जैसा कि ऊपर जिक्र किया जा चुका है कि पाकिस्तानी हमलावार गिलगित, असकरदो के कबाइली लूट मार कर लद्दाख के करगिल पर अधिकार जमा चुके थे। ज़ंसकर के पदम गांव तक कप्तान रूस्तम अली के ज़ेरे कयादत लाहौल की ओर बढ़ने की कोशिश कर रहे थे। दिल्ली पहुंचकर हम ने प्रधान मंत्री से मिलने का प्रयास किया, परन्तु असफल रहे। 8-10 दिनों तक कोशिश करने के बावजूद हमें नेहरू जी से मिलने का समय नहीं दिया गया, परन्तु हमने हिम्मत नहीं हारी। आखिर एक दिन एक महापुरुष जिस ने अपना नाम नम्बियार बताया, ने हमें दूसरे दिन कर्ज़न रोड पर उन से मिलने के लिए कहा। हम दोनों दूसरे दिन उन से मिलने गए, वहां उन्होंने हम से हमारे कागजात लिए और कुछ देर बाद हमें भी अन्दर बुलाया नम्बियार ने हमें सुश्री मृदुला सेराबाई से मिलाया सुश्री मृदुला सेराबाई - नेहरू जी के निकटत्तम सहयोगियों में से एक, पाकिस्तान से भागकर आई महिलाओं के पुर्नवास के इंचार्ज। कागज़ात के छान बीन के बाद मृदुलाजी ने हमें दूसरे दिन पुनः वहीं मिलने के लिए कहा। दूसरे दिन हम दोनों (मैं और ठाकुर देवी सिंह) अपने कबाइली ड्रेस में गए, मृदुला जी ने हमें बाहर बिठाया स्वयं कागज़ात ले कर नेहरूजी के पास गई, चन्द मिन्टों के बाद हमें भी अन्दर बुलाया गया। मृदुलाजी ने हमें नेहरूजी से मिलाते हुए कहा - ये दोनों कुल्लू, मनाली और रोहतांग के उस पार लाहौल-स्पिति के रहने वाले हैं। नेहरू जी कुछ परेशान नज़र आ रहे थे हमारी ओर मुखातिब होकर कहने लगे कि वे 1942 में मनाली, नगर गांव में रूसी कलाकार निकोलस रोरिक के निमंत्रण पर गए थे और फिर कुछ सोच विचार कर कहने लगे कि लाहौल-स्पिति तो बड़ा कठिन दुश्वार गुजार ईलाका है और फिर खामोश हो गए। हम ने लाहौल-स्पिति की जानकारी देते हुए वास्तविकता से परिचित करवाया कि किस तरह यह घाटी छः महीने के लिए संसार से अलग थलग हो जाती है साथ ही कड़ाके की सर्दी और घाटी की दुर्गमता से परिचित करवाया। यह सुन कर कहा कि तुम्हारे ज्ञापन पर सोच विचार के बाद एक्शन लिया जाएगा, पुनः खामोश हो गये। चन्द लम्हों के बाद कहने लगे कि लद्दाख में पाकिस्तानी लुटेरे आगज़नी, लूटमार कर आगे बढ़ रहे हैं और करगिल के ईलाके पर कब्ज़ा कर लिया है। उस समय लद्दाख में हवाई अड्डा नहीं था। नेहरू जी ने हमसे पूछा कि क्या कोई ऐसा रास्ता मनाली की ओर से लद्दाख को जोड़ता है? हम तत्काल बोल उठे कि जनाब! लाहौल वाले केलांग, बारालाचा, लोंग लचा से हो कर तिब्बत, यारकन्द और लद्दाख से व्यापार करते हैं। बस फिर क्या था, नेहरू जी के गमगीन चेहर पर मुस्कान उभर आई और पूछा कि क्या मई, जून के महीने लद्दाख के लिए रास्ता खुल जाता है? हम ने बताया कि जून के आखिरी हफ्ते तक हर हालात में हमारे लोग लद्दाख, रूपशों तिब्बत में उन, पश्म आदि के व्यापार के लिए जाते हैं। नेहरू जी ने खुश हो कर कहा कि आपकी माँगे मंजूर की जाएगी, फिलहाल प्रश्न लद्दाख को बचाने का है और फौरन फोन उठा कर सचिव ए० बी० अय्यंगर और जनरल किरयप्पा से बात की तदुपरान्त सुश्री मृदुला सेराबाई हमें गृह सचिव और जनरल किरयप्पा से मिलाने ले गई। गृह सचिव ने हम से रास्ते का ब्यौरा लिया और जनरल किरयप्पा ने नक्शा खोल कर रास्ते सम्बन्धी प्रश्न पूछे।

दूसरे दिन वे लोग हमें पुनः नेहरू जी से मिलाने ले गए, जनरल से भी मिलाया गया और हमें आदेश दिया कि एक फौजी मिशन साजोसामान मनाली के रास्ते से लद्दाख जाएगा और ठाकुर देवी सिंह को गाईड बना कर फौजियों के साथ जाने के लिए कहा गया तथा मुझे शीघ्र लाहौल पहुंच कर कुल्ली और घोड़ों के प्रबन्ध का काम सौंपा गया। चुनाचे 2/8 गोरखा रेजीमेंट कमाडेण्ट मेजर हरिचन्द के ज़ेरे कमाण्ड में साज़ो सामान मनाली के रास्ते केलंग पहुंचे। मैंने कुल्लू व लाहौल के प्रशासन तथा स्थानीय लोगों के साथ मिल कर घोड़ों तथा कुल्ली का इन्तज़ाम किया। लाहौल के प्रत्येक घर से जिन के पास घोड़े थे उन्होंने घोड़े दिए, जिन के घर में आदमी थे वे कुल्ली के रूप में जाने के लिए तैयार हुए और जिन के घर में दोनों नहीं थे उन्होंने चारे का यथा सम्भव प्रबन्ध किया। इस मिशन की लाहौल निवासियों ने बढ़ चढ़ कर सहायता की। इस प्रकार साज़ो सामान फौजी मिशन स्व० ठाकुर देवी सिंह के बतौर गाईड लेह लद्दाख की ओर रवाना हुए। संचार व्यवस्था नहीं थी इस लिए मुझे लेह से केलंग, केलंग से मनाली तक फौजीयों के डाक व्यवस्था की ज़िम्मेदारी दी गई और केलंग में श्री छेरिंग टशी कारपा के दुकान में हेडक्वार्टर बनाया। इस के लिए आठ पत्र वाहक और आठ गधे हर पड़ाव के

लिए एक गधा और एक पत्र वाहक 80 रूप प्रतिमास पर रखा गया, जिन का वेतन गोरखा रेजीमेण्ट की ओर से निश्चित हुआ था। लद्दाख, जंस्खर से कबाइली लुटेरों के डर से भागे लोगों की सूची बनाने तथा कुल्लू तक पहुंचाने की जिम्मेवारी मुझे दी गई। कुल्लू में बने शरणार्थी केम्प (आरज़ी तौर पर) के प्रबन्ध में सरकार, स्व राहुल सांकृत्यान तथा हिमालयन बुद्धिस्ट सोसायिटी के कारकून बी० एस० बौध ने सहयोग दिया। 1949 में एक और गोरखा रेजीमेंट 2/11 मेजर नैनी के कामंण्ड में सितम्बर माह में केलंग से साजो सामान सहित लेह के लिए रवाना हुआ। इस रेजीमेंट के साथ मुझे और स्व० पं० बसन्तराम को बतौर गाईड़ भेजा गया। बसन्त राम जी तो वापिस आ गए परन्तु मुझे दो साल तक वहीं रहना पड़ा, जहां मैंने लद्दाख बुद्धिस्ट एसोसिएशन तथा कुशोग वकुला के साथ मिल कर लद्दाख के विकास और वहां के समाज के उत्थान के लिए कार्य किया और 1951 में करगिल श्रीनगर के रास्ते कुल्लू पहुंचा। कुल्लू पहुंच कर हमें मालूम हुआ कि हमारे ज्ञापन पर कोई एक्शन नहीं लिया गया है, अत: 20 फरवरी 1951 में लाहौल-स्पिति पिपुल्ज एसोसियेएशन की एक आपातकालीन बैठक कुल्लू में हुई। हमें मालूम हआ कि 1935 के एक एक्ट की रूह से संविधान के अन्तर्गत एक्सक्लूडिड एरिया का दर्जा दिया जा रहा है और 1948 में हमें लाहौल-स्पिति को जनजातिया क्षेत्र घोषित करने का जो आश्वासन दिया गया था उस पर अमल नहीं हो रहा है क्यो कि यह आश्वासन सरकार के पत्र संख्या CA/50/CON/-148 dated 31-5-48 जो कि भारत के अंडर सक्रेटरी की ओर से था। अत: प्रधानमंत्री के पास पुन: बफद भेजने का निर्णय लिया गया, इस में ठाकुर देवी सिंह, श्री टशीदवा घरसंगी तथा मुझे भेजा गया। दिल्ली पहुंच कर हम पुन: सुश्री मृदुला सेराबाई से मिले, उन के माध्यम से नेहरू जी से मिले और उन्हें 1948 में दिए गए आश्वासन की स्मृति दिलाई। नेहरू जी ने फोन पर डॉ० अम्बेडकर को कुछ कहा और सुश्री मृदुला हमें डॉ० अम्बेडकर के पास ले गई और अम्बेडकर जी से लाहौल-स्पिति को जन जातीय क्षेत्र घोषित करने की प्रार्थना की। अम्बेडकर जी ने कहा कि जब संविधान का निर्माण हो रहा था उस समय हमने दो बार आप लोगों को अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए बुलाया, तब आप लोग क्यों नहीं आये? हम ने तत्कालीन वस्तु स्थिति से उन्हे अवगत कराया, उन्होंने हम से लाहौल स्पिति के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे। हमने वहां की कठिन परिस्थिति, गरीबी, अनपढ़ता और पिछड़ेपन की उन्हें जानकारी दी। इस पर कुछ सोच विचार के बाद डॉ० अम्बेडकर ने सहानुभूति जताते हुए कहा कि वे संविधान के पांचवे शेड्यूल (अनेक्सी) सितम्बर 1950 से भारत सरकार के Extra ordinary गज़ट में लाहौल - स्पिति को जनजातीय क्षेत्र घोषित करवा देंगे और हम ने पुन: अर्ज़ किया कि लाहौल-स्पिति एडवाईज़री कॉन्सिल को जल्दी अमली शक्ल दिया जाए। इस प्रकार लाहौल - स्पिति जो पंजाब का एक भाग था, को जन जातीय क्षेत्र घोषित किया गया तथा इस के अन्तर्गत इस क्षेत्र में ट्राईब्ज़ एडवायजरी कॉन्सिल की स्थापना 1952 में करा दी गई जिस मे 2/3 सदस्यों का चुनाव लोग करते थे और 1/3 सरकार नामजद करती थी। उस समय यह कॉसिल बहुत प्रभावशाली संस्था थी। इस प्रकार जनजातीय क्षेत्र की घोषणा के बाद इस इलाके के लोगों को कई सुविधाएं मिली, आरक्षण मिला जिस से लोग प्रगति के पथ पर अग्रसर हुए। इस घाटी में नई चेतना, नई जागृति लाने में इस घोषणा की भूमिका अविस्मरणीय है। ☐

पृष्ठ 7 का शेष

माना। यह तो वैज्ञानिकों की जिद थी कि इसे फूल, बल्कि "फूलों का झुंड" कहा जाए। असलियत कुछ भी हो इस का नाम "गोभी" है और आम आदमी के लिए यह सब्ज़ी है। इसीलिए बोतल, ऊनी पट्टू, जीरा, दूध, अण्डे तथा अन्य बहुमूल्य आईटमों के साथ फूलों का यह बेहुदा झुंड भी अक्सर तोहफे के रूप में सरकारी मुलाज़िमों के घर चला जाया करता है। क्यों कि सबसिडी का चक्कर होता है, लोन के केस होते हैं, ठेके मिलने के आसार होते हैं, खेती और घरेलू उपभोग की चीजें 'बेकडोर' से प्राप्त करने होते हैं और भी सैंकड़ों कागजी काम करवाने होते हैं। इस प्रकार यह एक कारगर फूल है। ज़रूरत पड़ने पर इसका इस्तेमाल ठीक उसी प्रकार किया जा सकता है जैसे अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में अमरीकी डॉलर जैसे किसी चालू मुद्रा का। वैसे हाल ही में फूलों के इस तथा कथित झुंड की मांग लोक निर्माण विभाग के बिहारी, नेपाली मजदूरों और ग्रेफ तथा आई० टी० बी० पी० के जवानों में भी बहुत बढ़ गई है। लेकिन एक ट्रेजिडी इस फूल के साथ हमेशा जुड़ी रहती है। वह यह कि दिल से कोई इसे फूल कह कर राज़ी नहीं। स्वयं मुझे इसे फूल कहने में भारी तकलीफ होती है। वैज्ञानिक चाहे लाख दलीलें दे, मेरा प्रखर एस्थेटिक सेंस वाला सुरूचि पूर्ण कवि हृदय इसे कतई फूल नहीं मानता। वह तो आज भी उन भूले बिसरे, खूबसूरत जंगली फूलों की खोज में भटकता रहता है और उन की याद में आँसू बहाता है- कहां खो गए सब फूल? ☐

लाहुल को मोरावियन मिशनरियों की देन: कुछ भ्रान्तियाँ और उनका निवारण

तोबदन

उन्नीसवीं सदी के मध्य काल में ईसाई धर्म के कुछ प्रचारकों ने लाहुल में आकर केलंग गांव में, उस समय केलंग गांव ही था-अपना मिशन स्थापित किया। इनकी संस्था का नाम मारेवियन मिशन था और मुख्यालय था जर्मनी में। ए० डब्ल्यू हयडे, ई० पाजेल, एच० ए० याश्चके, रैडस्लोब, रैकलर, वाल्टर एस्बो, सैमुएल रिब्बाक, ए० एच० फ्रांके आदि केलंग में रह चुके हैं। इनमें से कुछ एक के साथ उनकी पत्नी भी रहती थीं। ये लोग अच्छे पढ़े लिखे थे और कई अपने विषय के विशेषज्ञ थे। याश्चके छः भाषाओं के ज्ञाता थे तथा इसके अतिरिक्त संस्कृत, फारसी, अरबी आदि इतनी ही अन्य भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान रखते थे। याश्चके और डॉ० फ्रांके विश्वविख्यात विद्वान थे।

ईसाई मत का प्रचार मिशनरियों का प्रमुख कार्य था। इसके अतिरिक्त यूरोपीय यात्रियों और ब्रिटिश सरकार व सरकारी कर्मचारियों की भी अनेक प्रकार से वे सहायता करते थे। ऐसा वे अपनी सुविधा के लिए कर रहे थे। लाहुल यद्यपि उनके लिए एक पड़ाव मात्र था: अन्तिम लक्ष्य था तिब्बत, जहां जाने से उन्हें सीमा पर अधिकारियों ने रोक दिया था। वे आश्वस्त थे कि कभी भी उन्हें सीमा पार जाने की अनुमति मिल सकती है। इसी आशय से उन्होनें अपना ठिकाना तिब्बत की सीमा के निकट चुना था। लाहुल में धर्म प्रचार के अतिरिक्त स्वास्थ्य सेवा और शिक्षा प्रसार का भी काम किया। उन्होने केलंग में एक स्कूल, डिस्पैन्सरी तथा छापाखाना खोला। स्कूल तो और भी खोले थे परन्तु किसी कारण वश वे शीध्र बन्द कर दिए गए।

स्थानीय भाषा, संस्कृति, इतिहास, पुरातत्व, कला, रीति-रिवाज़ आदि विषयों का अध्ययन उन्होंने अपने सामान्य कार्यक्रम का अंग बनाया और यह उनकी बौद्धिक सुरूचि का प्रमाण भी है। इस क्षेत्र में जो भी काम मिशनरी पण्डितों ने किया है उसका हम लाहुल वासी सदा के लिए उनका ऋणी रहेंगे। इस विषय में प्रायः चर्चा भी होती रहती है: आलेखों और सम्भाषणों में।

ईसाई मिशनरियों के कृत्यों का विदेशी यात्रियों ने अपनी यात्रा-संस्मरणों में प्रशंसा सहित सविस्तार वर्णन किया है। इसके अलावा राजकीय अभिलेखों में भी बड़ी मात्रा में सामग्री संकलित मिलती है। ये सब मिशनरियों द्वारा स्वयं रिकार्ड किए गए दस्तावेज़ों के अतिरिक्त है।

वर्तमान में कतिपय विद्वानों के ईसाई मिशनरियों से सम्बन्धित लेखों और वक्तव्यों से कुछ नए तथ्य सामने आ रहे हैं जो विवादास्पद और आधारहीन प्रतीत होते हैं। जैसे कि; मिशनरियों ने लाहुल में लोगों को जुराब बुनना सिखाया, आलू और जौ की खेती करना बताया, रोशनी के लिए बड़ी खिड़की वाले मकान बनवाए। घरों में आग जलाने के लिए धुआं रहित लोहे के तन्दूर लगवाए, इत्यादि इत्यादि। अथवा यूं कहें कि जो भी चीज़ लाहुल में अच्छी दिखाई देती है उसका प्रायण मिशनरियों ने किया। आश्चर्य की बात यह है कि यह भ्रान्ति केवल शिक्षित लोगों में है। उनमें नहीं जो अनपढ़ हैं और गांव में रह रहे हैं। वास्तव में वे ही समाज में हो रहे किसी भी प्रकार के परिवर्तन के सच्चे गवाह हैं। गलत बातों को परम्पराएं आश्रय नहीं देती हैं।

सच्चाई यह भी है कि इन तथ्यों के विषय में ऊपर लिखित किसी प्रकार के अभिलेखों-प्रलेखों में भी कोई संकेत नहीं मिलता है।

क्षण भर के लिए यदि मान भी लें कि लाहुल में इनमें से कतिपय चीज़ों का प्रचलन मिशनरियों ने किया, तो प्रश्न उठता है कि ऐसा उन्होंने लद्दाख और किन्नौर में क्यों नहीं किया। ऐसी ही बहुत सी चीज़ें जो लाहुल में हैं वहां भी हैं तथा इनसे भिन्न भी अन्य कई चीज़ें वहां हैं। लेकिन वहां ऐसा कोई दावा नहीं करता है कि यह मोरिवियन मिशनरियों ने किया है- चाहे वह पढ़ा हुआ हैं अथवा अनपढ़।

लद्दाख में मिशन का कार्यालय लेह में और किन्नौर में कल्पा तथा पूह में था। ये सभी मिशनरी एक ही संस्था से सम्बन्धित थे। आपस में उनका सम्पर्क भी था। और कई तो लाहुल में रहने के पश्चात फिर वहां गए थे। वहां उन्होंने लाहुल से भी अधिक काम किया है। तो यदि लाहुल में उन्होंने कुछ किया है तो वही सब कुछ वहां भी कर सकते थे। परन्तु लाहुल जैसा जुराब न लद्दाख वाले पहनते हैं न किन्नौर में। अथवा वहां कुछ नया या भिन्न काम कर सकते थे। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि उक्त विषय पर वहां पर कोई प्रमाण नहीं मिलता है, न ही वहां कोई मिथ्या समाचार है।

शेष पृष्ठ 19 पर

और फिन्च दक्षिण की ओर उड़ गई

कर्नल प्रेम चन्द डिप्टी लीडर,
भरतीय एवरेस्ट अभियान 1984

एवरेस्ट की दक्षिण पूर्वी छोर पर क़मोवेश 28000 फीट पर होना अपने आप में अलग एहसास व अनुभव है। धवल कंचन जंगा को देखना एक भावनात्मक चाह थी। ठंडी हवा मेरे विंण्ड चीटर की बाहरी स्तह का स्पर्श कर रही थी। जमे हुए सख्त बर्फ के ऊपर बर्फ के कण फुसफसाहट करते हुए फिसल रहे थे। काले पत्थर का मीनार-नुमा शिला जो तीखी ऊपर उठती पहाड़ी रिज को ढक रहा था, ही अकेला मेरा साथी था। पूर्व की तरफ पूर्वी रिज के ऊपर एक दरार या कहिए शिला पर एक कटाव है जहां पर एक पीले रंग की टेंट जापानियों के शरद् कालीन एवरेस्ट अभियान के गवाह रूप में खड़ी है मुझे विश्वास है कि इस में एक पर्वतारोही की मृत देह बर्फ के नीचे दबी पड़ी है जिस की एक टांग बाहर निकली हुई है।

'जानें जाती हैं, दुर्घटनाएं घटती हैं, कामयाबियां भी मिलेंगी, हार का मुहं भी देखना पड़ेगा, फिर भी इस तरह के अभियान आते रहेंगे, यह एवरेस्ट है, और यही मानव प्रकृति की इच्छा-शक्ति है। जान कर भी खतरों और मौत को परखना सही मायने में सब से बड़ा साहसिक कार्य है, यह बात थ्यांग बोछे विहार के लामा ने हमें उस वक्त कहीं जब हमें उन का आशीर्वाद लेने के लिए उन के पास भेजा गया। यह चलता रहेगा, क्यों कि साहसिक कार्य का ही दूसरा नाम मनुष्य है।

यह बात 28 अप्रैल, 1984 की है। मैं अकेला था जबकि मेरे साथ कोई भी मानव नहीं था। लेकिन मेरे विचार, कंचनजंगा, साऊथ - कोल, कोल में छः टेंट, व पीलापन लिए चिथड़ें हुए टेंट के अन्दर लाश लगातार मेरे साथ थे। मैं बैठ गया। मैं पूरी तरह साज़ो-सामान से युक्त था। मेरे पास काफेलेक्स अल्ट्रा एक्सट्रीम जूते, जिन का रंग सफेद व अन्दर से मधुमक्खी के छते जैसी कोशिकाएं थीं, दो जोड़ी जुराब, मेरी पत्नी द्वारा बुना अन्दर का जुराब (बड़े साहसिक कार्य में हमेशा मेरे साथी), लम्बी पतली पर नर्म लोंग-ज़ोन सूती अंडर वियर, ऊनी कमीज़, स्वेटर और ओवर-आल, पर्वता रोहण साज़-समान, रेशमी, ऊनी दस्ताने और स्लीवा मिटन और बर्फ के मिटन और बर्फ के चश्में, बालाक्लावा, केरीमॉर रकसक जिस में आपातलीन राशन-रेज़िन, चॉकलेट ग्लूकोज़ और मीठे बिस्कुट थे व फर्स्ट - एड - किट, प्लास्टिक से ढकी माचिस, विवी सेक, अलग से चश्मा, दस्तानें व जुराबें, झण्डे, दो आईस और रॉक पिटन, 3/4 मीटर 8 एम एम की रस्सी, दो चाकू, देवी मां को मेरी भेंट (मैं नहीं बताऊंगा कि क्या था,) तेनजिंग का चढावा - जो प्रकाश किरणों द्वारा 'ओम' लिखा हुआ चमकीले कागज का बना था, कुछ सुपारी के दाने व कुछ खत्तग् (Scarves) शायद ही 15 ग्राम भारी हों लेकिन इन की महत्ता बहुत है। मेरा पेन्टेक्स केमरा जिस में एक्टाक्रोम 100 ए एस ए चढ़ा था व एक रोल अलग से बेग में था, ऑक्सीजन बोतल जिस की जीवन दायी क्षमता 1250 लिटर था व एक मास्क, एक साईमंड आईस- एक्स बचाव रेखा सहित और स्लीवा 12 प्वांइट जो एडजस्टेबल है, मेरे मिशन की अन्य संयुक्तियां (Attachments) थी। हाँ, मेरे जेब में कुछ टॉफियां भी थीं। कुछ मात्रा में टिशू पेपर व ग्लूकोज़ मिला पानी की बोतल भी मेरे पास थी। मैं बुटाने गाज-समाल कार्टरिज व कुछ प्लास्टिक बेग भी उठाए था जो मुझे सम्मीट केम्प में छोड़ना था। मेरे पास हैड - लैम्प व पवित्र गीता की छोटी प्रति भी थी जोकि मैंने सब से ऊपरी फ्लेप वाली जेब में रखा था।

मैं सुदृढ़ महसूस कर रहा था, चारों ओर का दृश्य सचमुच अलौकिक था। शिखर पर पहुंचने के लिए मौसम बहुत ही सुहावना था। हवा कोई तीखी नहीं, बस सिर्फ मन्द मन्द सी चल रही थीं। सूरज की रोशनी तेज़ नहीं थी, और किरणें हल्के बादलों से छनकर फैल गई थीं जो दृष्टि विषयता के लिए सुन्दर था। बर्फ की चादर कहीं पर भारी, कहीं पर नर्म और कहीं पर तेज़ हवा की वजह से पपड़ीदार थी। चढ़ने के हालात अच्छे थे, थकान की कोई गुंजाइश नहीं थी और जोखिम भी नही था। एवरेस्ट की दक्षिणी सम्मीट, सम्मीट रिज और दक्षिणी सम्मीट के नीचे की दरार, सब मिल कर ऐसे लग रहे थे जैसे वे मेरे वहां होने पर कृतिज्ञ हों व मेरे एकाकी प्रयास पर खुशी ज़ाहिर कर रहे हों। मैं अपने आप से खुश था। मैं पर्वत शिखरों द्वारा मेरे चढ़ाई के प्रतिक्रिया पर विश्वास करता हूं। मुझे पता है, इन ऊंची चोटियों को सैंकड़ों वर्षों से हमारे पूर्वज पूजते आए हैं मैं हमेशा भक्ति व विनम्रता के सम्मिश्रित भाव से इन के पास गया। ये देव-स्थान हैं और मेरे अभियान उन पर की गई तीर्थ यात्राएं हैं। और इस प्रकरण में तो देवी - मां दुर्गा स्वयम् थीं। साऊथ कोल से ट्रेल (Trail) को तोड़ना ही एक पर्वतारोंही के

लिए अपने आप में विशेष महत्व व मायने रखता है। इस से मुझे ऊंचाईयों में सुन्दरता पाने में मदद मिली। इससे मुझे अपने आप में मग्न जिस एक सिस्टम में पहुंचने की कोशिश कर रहा था, में मदद मिली। बर्फ के स्फटिक साफ नज़र आ रहे थे। मैं बर्फ के मैदान को व इस की बर्फीली तह की भिन्नताओं को साफ तौर पर परख सकता था। मैंने एक एक पत्थर और चट्टानों की कुछ अन्तराल पर निरन्तर मुख के आर पार जा रही पट्टियों का अध्ययन किया। मेरे पर्वतारोही अनुभव की यहां पर पूरी परीक्षा हुई, और मैंने यहां पर बर्फीले मैदानों, द क्रिस्टल, साऊथ कोल और मुख के बीच मुंह बाय खड़ी दरारों की सुन्दरता को पाया। हां मुंह बाय खड़ी थी क्यों कि मैं अकेला था। बहुत सी चीज़े अलग दिखने लगती हैं जब आप ऊंचाईयों में अकेले हों। मेरा रूट चयन अच्छा था। रूट चुनना एक कला है। और यहां मैंने पाया कि मैंने सबसे अच्छा जो रूट हो सकता था, उसे चुना है। मैं एकाग्र हो रहा था, सब देवीय ढंग से अनावृत हो रहा था, उफान लिए हुए - ये मेरे एवरेस्ट के दिन थे- वह दिन जब मेरा बीस- पच्चीस वर्ष पिछला एवरेस्ट पाने का स्वप्न हर एक कदम के साथ मेरी तरफ बढ़ रहा था। यह एक महान अनुभूति है जो ऐसी जगहों में मिलती है - अकेला, समरसता से परिपूर्ण!

मैं समय से अनभिज्ञ था। मुझे पता था कि मैं साऊथ-सम्मीट के पास पहुंच रहा हूं जब मैं मुख की ओर अकेला बड़ा शिला जो तीखी ऊपर उठती पहाड़ी रिज को ढक रहा था, की रेखा पर आया। यहां पर मैं बैठ गया और पीछे अपने बनाए रास्ते को देखा। मैंने अपनी एच० एम० टी० घड़ी पर नजर डाली, लगभग सुबह के दस बजे थे। मैंने अपना ऑक्सीजन मास्क उतारा मैं एवरेस्ट की वायु में सांस लेना चाहता था, मैं यहां की पद्धति में ढल जाना चाहता था। वास्तव में, मैं एवरेस्ट पर ऑक्सीजन के बिना कोशिश करना चाहता था, पर इस अभियान के उद्देश्यों को देखते हुए मैंने यह ख्याल छोड़ दिया। मैंने थोड़ी देर के लिए अपना काला चश्मा उतारा बर्फ, घाटी, रिज व कंचनजंगा, मकालू, आमाड़ा बलाम, पूमोरी और अनगिनत वृहत् पर्वत श्रृंखलाओं को अपनी ही आंखों से देखने के लिए! मुझे अपने व प्रकृति या कहिए प्रकृति की सुन्दरता के बीच कोई माध्यम नहीं चाहिए था। मुझे इस से स्नो-बलाईंडनेस होने का पता था, जानना अच्छा है मगर भावना उस से महत्तम है। जानकारी को तो पैदा किया जा सकता है लेकिन भावना को नहीं- मैंने चश्मा आंखों पर दुबारा पहन लिया। मैंने रीटा व अंग दोरजे को साऊथ कोल के बर्फानी मैदान से साऊथ कोल के ऊपर बढ़ते देखा। मैंने साऊथ कोल को देखा हमारे केम्प पर छः स्लीवों वाली तम्बुएं वायु की मार से उलझ गए थे। मैंने उन तम्बुओं में कुछ हरकत देखी। मैंने लोहत्से फेस, जनैवा सपर, लोहत्से व नुपत्से को देखा। मैंने खुम्बू हिमाद्रि वादी को दूर तक गहराई से देखा लेकिन मेरी आंखे बरबस कंचनजंगा की तरफ उसे देखने के लिए मुड़ जातीं। इस से मुझे बहुत सी चीज़ों की याद हो आई। मैंने 1977 में कंचनजंगा के साथ अपनी मुलाकात को याद किया। मैं चाह रहा था कि इस वक्त एन० डी० मेरे साथ होता और इन भावनाओं को बांटता। मैंने अपनी माताजी, पत्नी, बच्चे, पिता जी, बहनों और भाइयों व अपने दोस्तों की चाहना की, जो इन भावनाओं और दूरगामी विचारों को बांटने के लिए यादों में मेरे साथ थे। मैंने चाहा कि थ्यांगबोछे विहार के गुरु जी मेरे साथ होते, जो इस वक्त हमारी सफलता व सुरक्षा के लिए प्रार्थना कर रहा है।

हम क्यों पर्वतारोहण करते हैं? यही वह वजहें हैं शाय़द! मेरे लिए खासकर यही वजहें हैं। मैंने अपना ऑक्सीजन सिस्टम देखा। मेरे पास लगभग 900 लिटर गैस बचा था। मैं 2 लिटर प्रतिमिनट की दर से ऑक्सीजन ले रहा था। यह शिखर के लिए पर्याप्त था। मुझे हमेशा से अपना पता है कि मैं नीचे बिना ऑक्सीजन के उतर सकता हूं। मैं खुश व शारीरिक रूप से सुदृढ़ था। मैंने अपने पैरों की ऊँगलियाँ गिनी। मेरी टांगे व पैर गर्म थे। मैं अपने कपड़ों में सहज था। मेरा आईसएक्स मेरे पास में था व साथ में क्रेमपान, बूट कवर और ऑक्सीजन सब काफी मात्रा में तथा सही दशा में थे। मौसम, हवा, बर्फानी दशा सब उपयुक्त थीं और दक्षिणी सम्मीट मेरे समीप था। मैंने सम्मीट रिज, इसका आकार, एवरेस्ट सम्मीट व सम्मीट के लिए किस मार्ग को पकड़ना है, को देखा। मैंने पिछले दो वर्षों में एवरेस्ट को अपने जीवन में ढाल लिया था। सब कुछ ठीक था। रीटा व अंग दोरजे मेरे बनाए रास्ते से ऊपर की तरफ धीरे-धीरे बढ़ रहे थे। मैं अपने विचारों में खोया था, तभी फिन्च (पहाड़ी चिड़िया) तिब्बत स्लोप के सामने से नेपाल की तरफ मेरे सामने थोड़े नीचे से उड़ती हुई निकल गई। मुझे लहातो दोरजे की कही बात याद आई, 'प्रेम! पर्वतारोहण के समय पक्षी का उड़ना अच्छा शकुन होता है,'' और मैं शकुन- अपशकुन में विश्वास करता हूं। मैंने सोचा कि सब चीज़ें मेरी तरफ हैं। लेकिन - यह पहाड़ी चिड़िया खुम्बू वादी की तरफ उड़ी और मेरे पास अपनी यादें ही रह गईं। घड़ी दोपहर 12.45 का समय बता रही थी। रीटा, अंग दोरजे जिन के पीछे चन्द्र प्रभा, फू दोरजे और उन के पीछे दो शेरपा अभी भी मेरे ठीक नीचे से ऊपर की तरफ बढ़ रहे थे। साऊथ सम्मीट मेरी तरफ मुस्कुरा रहा था। मुझे लगा एवरेस्ट फतह हो गया। एक तम्बू के योग्य प्लेटफार्म बनाने के बाद मैंने अपने क्रेमपॉन साउथ कोल की तरफ करते हुए चन्द्रप्रभा से पीछे आने को कहा। समय लगभग दोपहर डेढ का होगा। आंसू मेरी आंखों से उमड़ने को थे और आंतड़ियां मुंह को आने लगीं, सूखा

गला मेरी सांसों को घोंट रहा था। मैंने अपना ऑक्सीजन यंत्र नीचे रखा और रीटा, अंग दोरजे व फू दोरजे को शिखर पर पहुंचने के लिए शुभकामनाएं दी। बाकी पहले ही इतिहास बन चुका है। एवरेस्ट के ढलानों में सफलताएं, विफलताएं, दुर्घटनाएं, मौतें तो होती रहेंगी! अभियान और प्रयास फिर भी होते रहेंगे - नहीं, हर वक्त अपने श्रद्धा - सुमन अर्पित करने हम जाते रहेंगे- ऐसे ही! एवरेस्ट - (Eve-Rest, हम इसे कहा करते थे) - अभी भी एवरेस्ट ही है इस धरती की देवी मां। थुगजे द्दे चोमो लुड.मा - धरती की जननी देवी मां, तुम मेरे प्रति दयालु रहीं। मुझे अपनी बारी मिली थी जो किसी तरह फिन्च (पहाड़ी चिड़िया) के साथ दक्षिण की ओर उड़ गई!!

पाद टिप्पणी:

जब मैं 10 बजे सुबह से 12-30 बजे दोपहर तक रीटा, अंग दोरजे, चन्द्रा, फूदोरजे और दो शेरपाओं का इन्तजार कर रहा था तो मेरे अर्न्तमन में भयंकर लड़ाई छिड़ी हुई थी। क्या मैं अकेला शिखर का प्रयास करूं या नहीं? यही द्वंद्व चल रहा था मेरे भीतर जो कभी प्रखर हो उठता था। मुझे पता था कि अभी नहीं तो कभी नहीं। मैंने इस दिन के लिए बरसों से तैयारी की थी। यह बहुत ही मुश्किल था- हां, बहुत ही मुश्किल मुद्दा! मैंने तीसरी बार रूकसक और मास्क लगाई और स्लोप पर सीढ़ी बनाना आरंभ किया। सौभाग्यवश, यह बात कि मैं सम्मीट पार्टी का नेता हूं और अभियान दल का उपनेता हूं और मेरे साथ दो औरतें हैं, सम्मीट पर जाने व सुरक्षित कैम्प में वापिस आने के लिए समय और स्थान का कारण, ढलते दिन का समय, दल के सदस्यों व दो शेरपाओं की सुरक्षा और प्रशासनिक मदद की कमी, खासकर ऑक्सीजन की कमी का ध्यान आया और मैंने इन्तज़ार करने का निश्चय किया। मुझे ही पता है कि यह निर्णय मेरे लिए कितना कष्टदायक था। और मैं खुश हूं कि मैंने यह निर्णय लिया मेरे निजी उद्देश्यों की वजह से अभियान के उद्देश्यों को तोड़ा नहीं गया, जिस से मुझे पर्वतारोहण के नियमों की पवित्रता बनाए रखने में मदद मिली - जिस से हिमालय साहसिक अभियान का वह हिस्सा कायम रहा जो मुझे बहुत प्रिय है। मैं उन लोगों का इंतज़ार करता रहा और अन्ततः वे मुझ से इकट्ठे हुए। मैंने सम्मीट टीम के गठन को अभियान के उद्देश्य, जो कि भारतीय महिला को एवरेस्ट की चोटी पर पहुंचना था, के अनुरूप बदला। मेरे इस निर्णय से मेरा वजूद अपनी नजरों में और ऊँचा हुआ जो कि मुझे बहुत प्रिय है और मैं कह सकता हूं कि 1984 एवरेस्ट अभियान की मेरी यह सब से महान् व्यक्तिगत सफलता व स्मृति है।

"थोड़ा सा और लेकिन यह कितना है,

थोड़ा सा कम और दुनियां कितनी दूर है।''

मैं निकट भविष्य में किसी दिन फिर काला पत्थर या गोक्यो चोटी पर जाऊंगा- एवरेस्ट को देखने, उसको फिर से जीने के लिए!

(अनुवाद-घरसंगी)

□

अर्थ का अनर्थ

एक बार लाहुल के एक प्रसिद्ध वैद्य जी अपने एक अनुचर को साथ ले कर त्रिलोकनाथ के आस-पास किसी गांव में एक मरीज़ का मुआयना करने गये। उन दिनों सड़कें नहीं थीं, दोनों थक कर चूर हो कर गन्तव्य तक पहुंचें! गृह-स्वामिनी ने उन्हें आदर पूर्वक बैठाया और चाय के साथ 'ल्वाड़'' खाने को दिए। अनुचर के पेट में चूहे शायद कुछ अकि ही उछल कूद कर रहे थे, उस ने पूरा 'ल्वाड़' एक ही ग्रास में खाना शुरू कर दिया। यह देख कर वैद्य जी ज़रा असमंजस में पड़ गए, सब के सामने कुछ कह नहीं सकते थे। मौका पा कर उन्होंने दो उंगलियां उठा कर अनुचर को यह इशारा किया कि 'ल्वाड़' के कम से कम दो टुकड़े कर के खाए। लेकिन अनुचर ने इस का दूसरा ही अर्थ लगाया। अब उसने दो-दो 'ल्वाड़' एक ही ग्रास में खाना आरंभ कर दिया। वैद्य जी मन ही मन झल्ला उठे

पर कह कुछ न सके।

<u>पाद टिप्पणी-</u> उस इलाके के लोग 'ल्वाड़' (चिलड़ा) बहुत ही छोटे आकार के बनाते हैं।

□

त्रिलोकनाथ यात्रा बनाम जातरा

के० अंगरूप लाहुली

अति प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में यात्रा, पदयात्रा एवं तीर्थयात्रा करने की परम्परा बहुत प्रचलित थी। ऐसी यात्राएं अकेले या समूह में की जाती थी। इन में श्रवण कुमार की बेंहगीयात्रा और पांच पाण्डवों की हिमालय यात्रायें आदि बड़ी प्रसिद्ध हैं। ऐसी यात्राएं सामाजिक एवं धार्मिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण होती हैं। तीर्थ यात्राओं से हम आध्यात्मिक शान्ति तो प्राप्त करते ही हैं, साथ ही ऐसे अवसरों पर हम अपने सुदूर प्रदेशों में रहने वाले परिजनों से भी मुलाकात करने का मौका पाते हैं। आज तो राजनैतिक समाधान के लिए भी यात्रा या पदयात्राओं का आयोजन होता है। इन में राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी की दांडी यात्रा- महात्मा गान्धी ने यह यात्रा साबरमती आश्रम (अहमदाबाद) से 12 मार्च 1930 को शुरू की थी- जिसका प्रयोजन ब्रिटिश सरकार को नमक - कर न देने के लिए लोकमत जागृत करना था- ऐतिहासिक महत्व की यात्रा है, जिस के सामने ब्रिटिश हुकूमत को भी झुकना पड़ा था। यह यात्रा भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नमक- सत्याग्रह के नाम से जानी जाती है।

लाहुल के पुरा -समाज में भी यात्राओं का बड़ा महत्व था। इन यात्राओं की जानकारी आज हमें यहां के लोक -गीतों और लोक गाथाओं के माध्यम से भली प्रकार मिलती है। प्रस्तुत गुरे - गीत (लोक - गीत) ऐसी ही एक यात्रा का सजीव वर्णन है, जो कालांतर में त्रिलोक नाथ-जतरा के नाम से ख्यात हुआ। यह बड़े गौरव की बात है कि हमारे पूर्वज़ अनपढ़ होते हुए भी ऐसे लोक-गीतों और लोक-गाथाओं को रच गए हैं, जिन का आज कोई सानी नहीं है- इन लोक- साहित्य के माध्यम से ही आज हम अपनी संस्कृति और इतिहास को पहचान रहे हैं, तथा हम अपने वक्षस्थल पर हाथ रख कर यह कहने योग्य हो गए हैं कि कभी हमारी भी एक समुन्नत संस्कृति थी और गौरव पूर्ण इतिहास विद्यमान था। अन्यथा लाहुल जैसे प्रत्यन्त प्रदेश एवं आदिवासियों का इतिहास कभी का काल के गर्त में विलीन हो गया होता, स्थानीय बोली में 'त्रिलोकनाथ जातरा' का दूसरा प्रचलित नाम 'रेपक-पोरी' है। इस जातरा के सन्दर्भ में रचा गया गुरे-गीत आज से कुछ वर्षों पहले तक मौखिक रूप में ही उपलब्ध होता था। भारत वर्ष की आज़ादी के पश्चात् जब गांव-२ में शिक्षा का प्रसार होने लगा तो इस के परिणाम स्वरूप लोग जागृत हो गए और वे अपनी अमूल्य संस्कृति को समझने लगे। इस प्रकार कतिपय प्रबुद्ध लोगों का ध्यान गुरे-गीतों के संकलन करने की ओर गया। फलतः श्री सतीश कुमार लोप्पा जैसे उत्साही नव युवकों ने गांव में बुजुर्गों से गुरे-गीतों को बारम्बार गवा कर लिपिबद्ध कर लिया है। लाहुल जैसे सीमावर्ती प्रदेश की इति-वृत्त इसी पद्धति से संकलित किया जा सकता है। अतः वे साधुवाद के पात्र हैं। उन गुरे-गीतों में से रेपक-पोरी से सम्बन्धित लोक-गीत का यह अविकल रूप मैंने उन्हीं से प्राप्त किया है और इस का हिन्दी में अनुवाद किया है। आशा है कि यह मेरा प्रयास पाठकों को रूचिकर लगेगा। गीत इस प्रकार प्रारम्भ होता है।

तौंसेरी ध्याड़ी ए तून्देरी पूरीए।

तीलोके-नाथेरी ए दरूशाने आई ए।।

प्राक् काल से ही गर्मी के दिनों लोग तुन्द-पुरी यानी नगरी में भगवान त्रिलोकनाथ (आर्य अवलोकितेश्वर) के दर्शनार्थ आया-जाया करते थे। कालान्तर में यह यात्रा बड़ी लोक प्रिय होने लगी तो लोग इस में समूह के समूह में आने लगे। परिणाम स्वरूप गर्मी के दिनों की यह त्रिलोकनाथ यात्रा बड़ी प्रसिद्ध हो गई और एक दिन ऐसा भी आया कि यह यात्रा स्थानीय बोली में जातरा उत्सव का रूप धारण करने लगी, और आज यह यात्रोत्सव भादौं-माह में पड़ने वाले किसी भी प्रथम शुक्र/शनि के दिन नियमित रूप से आयोजित किया जाता है।

ए लोको दुनियां ए जातूरे आईए।

ए तौंसेरी ध्याड़ी ए त्रिलोके नाथे जात्रे ओ।।

इस प्रकार गर्मी के दिनों की इस जातरा में , जब लोग झुण्ड के झुण्ड में आते थे तब सर्व प्रथम वे-

धीवे संजोटी ए त्रिलोक नाथे चाढ़ी ए।

ए शावेना कोरो ए श्वे दण्डवता कीती ए।।

भगवान् त्रिलोकनाथ की प्रतिमा के सामने घी का संज्वा यानी प्रदीप चढ़ाते थे। सौ-सौ बार परिक्रमा और सौ-सौ बार दण्डवत् प्रमाण भी किया करते थे।

ए बायाड़ी पदुरे ओ द्रुमुसू छेड़ी ए।

नौवे पाता नंगाड़ा ए पादारा घुमेला ए।।

(इस प्रकार श्रद्धा से वशीभूत यात्री वृन्द त्रिलोकनाथ के दर्शन से प्रसन्न हो कर तुन्द नगरी के उस सुन्दर एवं) समतल भूमि पर नृत्य और नाच से धूम मचा डालते थे,

और ऐसे मस्ती भरे माहौल में नये-नये रागों और नगाड़े की आवाज़ से मैदान गूंज उठता था।

गद्देटू पूतूरा ए झागूड़ा कीती ए।

गद्देटू पूतूरा ए झागूड़ा कीती ए।।

एक समय की बात है कि एक ऐसे ही यात्रोत्सव के अवसर पर लोग नाच - गा रहे थे कि एक उच्छृंखल भेड़ चरवाहा गद्दी पुत्र, जो अपनी भेड़ बकरियों के साथ वहां की किसी चरागाह में रहता था, उत्सव की भनक मिलते ही वहां आ पहुंचा और दूसरे तीर्थयात्रियों के साथ नाचने गाने लगा। दूसरों की देखा - देखी में उस ने भी मदिरा पान किया, मदिरा का पान करना था कि उस का दिमाग, एक दम आसमान पर चढ़ गया, और खुराफात करने लगा। इस प्रकार उस के सामने से जो कोई भी गुज़रता, वह उस से लड़ पड़ता था।

ए बेड़े अन्दूरा झागूड़ा कीती ए।

ए तुमरा ए मतूमारे सामाणा लडूंदे ओ।।

इतना ही नहीं अन्त में वह राज बेढ़े (महल) में प्रवेश कर वहां भी उत्पात मचाने लगा। लोग उस गद्दी पुत्र की उदण्डता से खिन्न हो कर, उस से कहने लगे कि क्या तुम्हारी मति मारी गई है? जब कि ऐसे शुभ और शकुन के अवसरों पर राजा और राणाओं की स्तुति और पूजा होती है, तू इस के विपरीत झगड़ा-फसाद खड़ा करता है। यदि तुम को लड़ने - झगड़ने का इतना शौक है तो अपने समान व्यक्तियों से क्यों नहीं लड़ लेता? लोग उस से यह भी कहने लगे कि तुम ने राज घराने की हैसियत की अवहेलना की है। अब तुम को राज दण्ड भुगतना होगा। लोग उस से यह भी पूछने लगे कि आखिर यह तो बताओ की तुम को राज-बेड़े में घुस कर खुराफात करने का साहस कैसा हुआ?

तुन्देरी राणा ए चम्बे जोगू त्यारी ए।

ए अन्दूरा निरोड़ा ए ठालूणे लागी ए।।

गद्दी पुत्र की उदण्डता से राणा परिवार अप्रसन्न था, अतः तुन्द नगरी के राणा (ठाकुर) उस के विरूद्ध शिकायत ले कर चम्बा राज दरबार में जाने की तैयारी करने लगे। यह सर्वविदित है कि लाहुल घाटी का यह क्षेत्र दीर्घकाल तक चम्बा सामन्ती के अधीन रहा है, और यह चम्बा-लाहुल कहलाता था। अन्तःपुर की ठाकुरानियों ने जब यह खबर सुनी कि राणा गद्दी पुत्र के विरूद्ध शिकायत लेकर इस ऊष्ण काल में चम्बा जाने की तैयारी कर रहे हैं, तब वे चिन्तित हो गईं।

तौंसेरी ध्याड़ी ए पिता-पानी रे डारे ओ।

ए शैरी न पाँदे ओ दो गाला कराणा ए।।

वे राणा के पास जा कर कातर परन्तु लुभावने स्वर में कहने लगी, "हे! प्राण प्रिय, इन गर्मी के दिनों नीचे चम्बा की ओर पित्त (पीलिया) और पानी (बरसात) दोनों का बड़ा डर (खतरा) रहता है। अतः आप इस समय चम्बा न जाएं वरन् सर्दी के दिनों वहाँ जा कर महाराज से दो बातें कर लेना" अर्थात् गद्दी पुत्र के विरूद्ध मामला दर्ज करवा देना।

(नोट: गद्दी धौलाधार पर्वत श्रेणी से घिरा, चम्बा जिला की तहसील भरमौर के रहने वाले एक जाति विशेष का नाम है। इन में ब्राह्मण, वैश्य और क्षत्रिय आदि सभी वर्ग के लोग मिलते हैं। एक एक गद्दी परिवार की हज़ारों भेड़-बकरियाँ होती हैं। कुछ लोग खेती-बाड़ी का काम भी करते हैं। और इन में कुछ तो अच्छे ज़मीनदार भी होते हैं। गर्मी के दिनों जब धौलाधार पर्वत और चम्बा घाटी की हरी घास सूखने लगती है तब ये लोग अपने ढोर के साथ लाहुल - स्पिति के जंगलों मे पहुंच जाते हैं, जहां इन की नियमित चरागाहें होती हैं। इन चरागाहों के लिए वे सरकार को कर अदा करते हैं।

सामाजिक परिवर्तन एवं शिक्षा के प्रसार के साथ-२ गद्दी समाज के इस पैतृक व्यवसाय ने भी अब करवट बदलना आरम्भ कर दिया है। अब देखना यह है कि इन की यह परम्परा कब तक जीवित रहती है और ये लोग कब तक अपने चौपायों के साथ लाहुल -स्पिति आते जाते रहेंगे। गद्दी चरवाहे, लाहुल-स्पिति के जीवन का एक अभिन्न अंग माने जाते हैं। जब ये लोग यहाँ के जंगलों में पहुंचते हैं तब गद्दी पुत्रों की बांसुरी की सुरीली तान से घाटी गूंजायमान हो जाती है, और जंगल स्वर लहरियों से स्पन्दित हो उठता है।

☐

लाहुल में संयुक्त परिवार की ढहती दीवारें

छायाराम

जनजातीय ज़िला लाहुलस्पिति हिमाचल प्रदेश में अपनी विशिष्ट पहचान और विचित्र भौगोलिक स्थिति के लिए प्रसिद्ध है। लाहुल इस ज़िले का मुख्य भाग है और यह भाग वर्ष में लगभग सात आठ मासों के लिए शेष संसार से कटा रहता है। कुछ ही वर्ष हुए दिसम्बर से मई तक इसका सम्पर्क हैलीकॉप्टर सेवा द्वारा शेष संसार से जोड़ने का प्रयास सरकार की ओर से किया गया है।

लाहुल में एक सुदृढ़ तथा सुगठित संयुक्त परिवार की व्यवस्था तथा उसका परम्परागत पालन इसकी विशिष्ट पहचान के अनेक कारणें में से एक है। विचित्र भौगोलिक परिस्थिति वश यहां के लोगों का जीवन कितना कठिन व विकट है, इस का सहज अनुमान गेर लाहुल वासियों के लिए यहां के जीवन में घुले मिले बिना असम्भव है।

उपर्युक्त विशिष्ट और विचित्र परिस्थिति में जीने वाले लोगों में संयुक्त परिवार के प्रति विशेष आस्था और विश्वास की परम्परा दीर्घकाल से प्रचलित है। फलस्वरूप यह पिछड़ा क्षेत्र अनेक अभावों और कठिनाईयों से ग्रस्त होते हुए भी अपने आर्थिक ढांचे को किसी सीमा तक बनाए रखने में सफल व समर्थ रहा है।

यहां के प्रत्येक संयुक्त परिवार में बाप अथवा सबसे बड़ा भाई एक कुशल मुखिया की भूमिका निभाता है। मुखिया के निर्देश व आदेश का पालन परिवार के अन्य सभी सदस्यों के लिए नैतिक कर्तव्य माना जाता, एक परिवार में चाहे जितने भी भाई- बहनें तथा सदस्य हों सभी मिलजुल कर उस परिवार के सुख-दुःख तथा आर्थिक दशा सुधारने के लिए भागीदार होते हैं। सभी सदस्यों की कमाई से बची धन राशि मुखिया के हवाले कर देते हैं, और वह धन उस परिवार की सांझी सम्पत्ति मानी जाती है। इस प्रकार संचित धनराशि अथवा सम्पत्ति का उपयोग उस परिवार की किसी प्राकृतिक आपदा का सामना करने तथा उस के सामूहिक उद्देश्य के लिए किया जाता है। संयुक्त परिवार के हर सदस्य का उस परिवार के लिए किसी न किसी रूप में योगदानआवश्यक माना जाता है। परिणाम स्वरूप परिवार के सभी सदस्यों में पारस्परिक सौहार्द तथा आत्मीयता की पवित्र भावना के दर्शन स्वाभाविक हैं। वास्तव में यही भावना संयुक्त परिवार की कड़ियों को जोड़ने तथा पारिवारिक एकता की जड़ों को सुदृढ़ करने में सफल रही थी। और इस तरह यहां के लोगों में सह-अस्तित्व को बल मिला जो यहां के संयुक्त परिवार का एक विशिष्ट गुण है। संयुक्त परिवार की इस सुन्दर और सूझ- बूझ भरी व्यवस्था से कोई भी परिवार अपनी छोटी मोटी समस्याओं को स्वयं ही सुलझाने में समर्थ हो जाता है। यही कारण है कि सरसरी दृष्टि डालने पर यहां के लोगों का जीवन स्तर किसी अन्य जनजातीय लोगों की तुलना में अपेक्षाकृत अच्छा दिखाई देता है। किन्तु यहां के आर्थिक मूल्यांकन करने वाले किसी भी व्यक्ति को,वह चाहे कोई राजनैतिक नेता हो, चाहे सरकारी अधिकारी हो, चाहे कोई पर्यटक और चाहे कोई पत्रकार, उसे संयुक्त परिवार की इस बड़ी इकाई तथा मात्र एक पति-पत्नी की छोटी इकाई के बीच पाए जाने वाले भेद की अनदेखी नहीं करनी होगी अन्यथा सही मूल्यांकन सम्भव नहीं है।

दुर्भाग्य की बात है कि लाहुल में संयुक्त परिवार की जिन कड़ियों के जुड़ने से एक आदर्शमय पारिवारिक व्यवस्था की रचना हो चुकी थी, वे कड़ियां आज चरमरा कर धीरे-धीरे टूटने का संकेत दे रही हैं। फलस्वरूप यहां के सामाजिक और पारिवारिक स्वरूप में एक अवान्छनीय विघटन की आशंका उत्पन्न हो गई है। प्रश्न उठता है कि संयुक्त परिवार के प्रति पहले इतना मोह और अब अचानक इस मोह भंग के क्या कारण है? ऊपर जिस कष्ट दायक व कठिन जीवन का संकेत दिया गया है, शायद वही परिस्थिति संयुक्त परिवार के प्रति मोह का कारण रहा होगा। उस समय न तो आज की तरह शिक्षा तथा यातायात की सुविधाएं उपलब्ध थीं और न ही आज जैसी नकदी फसलें थीं, जिन से लोग आज का सा जीवन जी सकते थे। कुल्लू उस समय यहां के लोगों की रोज़ी रोटी कमाने का एक मुख्य स्थल था किन्तु कुल्लू आने के लिए दुर्गम रोहतांग मुंह बाए खड़ा था और पीठ पर बोझ उठाए एक दो पद यात्रियों को काल का ग्रास बना दिया करता था। गरीबी अपनी चरम सीमा पर थी। खाते पीते परिवारों की संख्या ऊँगली पर गिने जाने भर थी, वह भी संयुक्त परिवार के बूते पर। ऐसी कठिन स्थिति में सह अथवा संयुक्त की पवित्र भावना समय और परिस्थिति की मांग थी। ऐसी विकट परिस्थिति वश ही बहुपति प्रथा का प्रचलन भी इस दूरवर्ती क्षेत्र में रहा हो, यह कहा जा सकता है। इस तरह बहुपति प्रथा की संयुक्त परिवार की व्यवस्था को बनाए रखने में एक कड़ी की भूमिका निभाती रही। यह अलग बात

है कि यह प्रथा किसी भी विकसित सभ्य समाज में मान्य नहीं हो सकती।

1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ तो यह शेष संसार से कटा क्षेत्र लाहुल भी स्वतन्त्रता की स्वच्छ और सुगंधित वातावरण में सांस लेने लगा। स्वतन्त्र भारत की नई सरकार ने 1952 में इसे जनजातीय क्षेत्र घोषित कर दिया और इसके चहुंमुखी विकास के लिए योजनाएं बनाई गईं। 1960 के दशक तक लाहुल शिक्षा और यातायात की पर्याप्त सुविधाएं प्राप्त करने में समर्थ हो गया। 1960 और 70 के दशक में सौभाग्य की बात यह हुई कि आलू की नकदी फसल से मेहनतकश लाहुलवासियों की काया ही पलट गई। इधर शिक्षा के क्षेत्र में उच्च शिक्षा प्राप्त करके अनेक मेधावी छात्र आरक्षण का लाभ उठा कर प्रथम और द्वितीय श्रेणी के उच्च सरकारी पद प्राप्त करने में सफल हो गए। परिणाम स्वरूप यहां के लोग धीरे-धीरे आर्थिक व सामाजिक जकड़न से उबरने लग गए, किन्तु पूर्णतय: उबरने में अभी काफी समय लगेगा।

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मानव शिक्षित होकर भी ज्यों-ज्यों आर्थिक स्वाबलम्बन की ओर उन्मुख होता है त्यों त्यों उसमें सामाजिक बन्धनों से मुक्त होने की प्रवृति जागृत हो जाती है। शायद इसी प्रवृति से लाहुल में बहुपति प्रथा की समाप्ति का श्रीगणेश हो गया। फलस्वरूप परिवार के अन्दर जिस सह अथवा संयुक्त की पवित्र भावना थी, उसमें कमी की शुरूआत भी होने लग पड़ी और उस के स्थान पर वैयक्तिकता ने ज़ोर पकड़ना आरम्भ कर दिया है। यह वैयक्तिकता दिन प्रतिदिन इतनी प्रबल होती जा रही है कि इससे संयुक्त परिवार की जड़ें हिलने लग गई हैं। इसे अति वैयक्तिता की संज्ञा देना उचित होगा। आज सारा लाहुल इस अति वैयक्तिकता का शिकार होने के कगार पर खड़ा है। फलत: लाहुल में संयुक्त परिवारों के विखण्डित होकर छोटी-छोटी इकाईयों में बंटने के भले ही इक्के दुक्के उदाहरण हमारे सम्मुख आए व आ रहे हैं, किन्तु यहां का कोई भी समझदार व्यक्ति इस कटु सत्य को नकार नहीं सकता कि आज लाहुल के 80 प्रतिशत संयुक्त परिवारों में व्यक्तिवाद का घुन लग चुका है जो उन्हें अन्दर ही अन्दर थोथा और खोखला किए जा रहा है। ऐसे परिवार आज जाने अनजाने एक विचित्र घुटन का जीवन जी रहे हैं। जिसके उगलने अथवा निगलने, दोनों से भयंकर विस्फोटक परिणाम की सम्भावना है।

शिक्षा की जगमगाती ज्योति और आर्थिक स्वावलम्बन के परिवेश में सामाजिक कुरीतियों से मुक्त होने की बात तो समझ में आ सकती है किन्तु विडम्बना की बात तो यह है कि शिक्षा की रोशनी में हम पारस्परिक सौहार्द, आत्मीयता और सह-अस्तित्व जैसे अनेक गुणों से कोसों दूर भाग रहे हैं। परिणामस्वरूप लाहौल में संयुक्त परिवार रूपी भव्य भवन की दीवारें ढेहती दिख रही हैं।

मेरे विचार में आज लाहुल का प्रत्येक उच्च शिक्षित व्यक्ति आर्थिक रूप से स्वाबिलम्बित हो, सामाजिक कुरीतियों व बन्धनों को तोड़, किन्तु संयुक्त परिवार की कड़ियों को जोड़ कर सह अस्तित्व की भावना संजोए रखे तो अच्छा होगा। अन्यथा अति वैयक्तिकता अथवा व्यक्तिवाद को बल मिलेगा और प्रबल होंगी अलगाव तथा पृथकता जैसी दुरभावनाएं परिणाम भयंकर होगा अर्थात संयुक्त परिवार का विराट वृक्ष सूख कर ढह जाएगा! रह जाएगा मात्र ठूंठ और हम उसकी सुन्दर तथा सुखद छाया के लिए तरसते रहेंगे।

□

पृष्ठ 12 का शेष

लाहुल में और भी कई विशेषताएं हैं जो अन्यत्र नहीं हैं। वेशभूषा, आभूषण तथा कई रीति रिवाज अन्य स्थानों से भिन्न हैं। ये सब ईसाई मिशनरियों के कारण नहीं है।

मोरावियन मिशनरी लाहुल में लगभग 90 वर्ष तक रहे और उनको लाहुल छोड़े लगभग पच्चास वर्ष हुए हैं। यह अति प्राचीन घटना नहीं है। फिर भी हमें उनके विषय में बहुत कम ज्ञान है। हमें अभी उनके विषय में बहुत कुछ जानने और सीखने की आवश्यकता है। लेकिन यह केवल कल्पना और अनुमान के सहारे नहीं हो सकता है। हमें इसके लिए कठिन परिश्रम करना होगा जैसा कि आलू और मटर पैदा करने के लिए हमारे किसान बहन- भाई कर रहे हैं। तभी हम ऐसे तथ्य प्रस्तुत कर सकते हों जो विश्वसनीय है और जिनका मूल्य चिर स्थाई हों

□

लाहौल घाटी में पारिस्थितिक असन्तुलन एवं पर्यावरण ह्रास

सोनम अंगरूप
हि० प्र० व० वि० कुल्लू

भारत में वैदिक काल से यह माना गया है कि प्रकृति और पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं, इनको एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। मनुष्य को प्रकृति का एक अंग माना गया है। परन्तु आज की सभ्यता और विज्ञान के युग में मनुष्य ने अपने आप को प्रकृति से अलग मान लिया और प्रकृति पर विजय पाने की होड़ सी लग गई। आज मानव ने अपने आप को सब से महत्वपूर्ण समझ लिया है ओर वह सोचने लगा है कि प्रकृति एवं पर्यावरण को वह जैसा भी चाहे ढाल सकता है। यह मनुष्य की बहुत बड़ी भूल है, इसी होड़ में वह भयानक विनाश का शिकार बन गया है और आज उस ने अपने ही अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। पर्यावरण के पांच तत्व माने गए हैं -वायु, जल, मिट्टी या मृदा, वनस्पति एवं वन्य प्राणी। प्रकृति ने पृथ्वी में जैव संहति की रक्षा के लिए किसी एक प्राणी, को अधिक मान्यता तथा महत्व नहीं दिया है। उस की दृष्टि में प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक जीव महत्वपूर्ण है, ये पांचों तत्व परस्पराश्रित हैं। इस के आपस में सम्बन्ध बहुत नाजुक तथा भंगुर है। एक तत्व पर अगर दबाव पड़े तो उस का हर दूसरे तत्व और आखिर में समूचे पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। इन आपस के सम्बन्धों को पारिस्थितिक सन्तुलन कहते हैं।

ज्ञान और विज्ञान के इस विस्तार और विकास से मनुष्य को अपने लम्बे इतिहास में पहली बार पता लगा है कि उस ने अपने और समस्त जीव के अस्तित्व को भयोत्पादक स्थिति में पहुंचा दिया है। बिगड़ते पर्यावरण और पारिस्थितकीय असन्तुलन से जो स्थिति आज के युग में पैदा हुई है उस की तुलना न किसी महामारी से, न किसी प्राकृतिक आपदा से तथा न ही विश्व महायुद्धों से की जा सकती है। वैज्ञानिक हमें बताते हैं कि प्रदूषण की क्या सीमा हो गई है और पारिस्थितिक असुन्तलन से हम विनाश के कितने नज़दीक पहुंच गएं हैं इस दशा के लिए मनुष्य स्वयं ही जिम्मेवार है और अब विश्व के सभी देश और सारी मानवता इस पर चिन्तन करने लगी है आइए देखें इस परिप्रेक्ष्य में कि पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी का लाहौल घाटी में कितना व्याह्रास हुआ है।

जलवायु और विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण लाहौल घाटी भारत के सब से दुर्गम क्षेत्रों में से है। यह क्षेत्र चारों ओर से गगनचुम्बी भीतरी हिमालय के पीर पंजाल पर्वतमाला श्रेणी तथा जन्सखर पर्वतमाला श्रेणियों से घिरा हुआ है। इन पर्वत मालाओं की औसतन ऊंचाई 18000 फुट है और सबसे ऊँची चोटी समुद्र तल से 21000 फुट है। इन पर्वत ऋंखलाओं के आंचल में बसे इस दुर्गम तथा ढलानदार क्षेत्र में जलवायु सम्बन्धी आंकड़े चरम सीमा को छूती है। तापमान शून्य से कई डिग्री नीचे चली जाती है। और अधिकांश पर्वतों की चोटियों में बर्फ कभी नहीं पिघलती है। वार्षिक औसतन वर्षा 4 इंच से 6 इंच तक और बर्फ 8 इंच से 15 इंच तक पड़ती है तथा वार्षिक अवपातन 18 इंच से 20 इंच तक पड़ती है। गर्मियों में कम वर्षा और तापमान की कमी के कारण पौधों के बढ़ने का समय बहुत कम रह जाता है। इसी लिए सारी घाटी को 'सर्द मरुस्थल' की संज्ञा दी गई है। भू-गर्भ तथा भू-तत्व की दृष्टि से देखा जाए तो यहां के चट्टानों की रचना अधिकतर माइकाशिस्त, कार्बोनेशियस शैल व स्लेट तथा चूने द्वारा हुई है। यह पहाड़ ऐसे बने हैं जो थोड़े से विघ्न पड़ने पर तुरन्त टूट फूट जाते हैं मिट्टी में पकड़ की शक्ति की कमी है, जल और वायु द्वारा इन का आसानी से क्षरण हो जाता है। अधिक बर्फ और वनस्पति की कमी से इस प्रक्रिया में तेज़ी आ जाती है जिस के कारण समस्त घाटी भूस्खलन की दृष्टि से असुरक्षित है।

इन तथ्यों को ध्यान में रख कर कहा जा सकता है कि यहां प्रकृति ने अपना क्रूरतम रूख अपनाया है; क्यों कि जीव व वनस्पति इन विशिष्ट परिस्थितकीय खंड में पनपने के लिए पर्यावरण धारकों के प्रति अपनी निहित अनुकूलताओं का विकास नहीं कर पाते। इन सीमाओं और परिस्थितियों के अनुरूप जिन प्रजातियों ने अपने आप को ढाला है स्पष्ट है कि वे बहुत कम होंगे उन का सन्तुलन बहुत नाजुक व भंगुर होगा। यानि थोड़ी सी जैविक एवं प्राकृतिक दबाव से यह संतुलन बिगड़ सकता है। तथा जाति और प्रजाति तुरन्त विलुप्त हो सकता है। इन सीमित प्रजातियों को भी मनुष्य ने इन ऊँचे और दुर्गम क्षेत्रों पर ठीक से पनपने नहीं दिया है, जिस से स्थिति दुर्भाग्य पूर्ण तथा भयावह हो गयी है क्यों कि इन में असंख्य विलुप्त हो चुके हैं और शेष को विलुप्ति का खतरा हो गया है।

जैव विविधता सब प्रकार के जातियों एवं प्रजातियों की सुरक्षा का प्रतीक माना गया है और इस के महत्व को वैज्ञानिक अब अधिकाधिक मानने लगे हैं जैसे पहले भी कहा

गया है कि यह विविधता वैसे ही घाटी में बहुत कम है और जब भी कोई प्रजाति विलुप्त होती है तो उस के साथ विलुप्त हो जाती है एक विशेष प्रकार की जननिक गुणवत्ता, जिसे हम कभी ला नहीं सकते। यह स्थिति बहुत चिन्ताजनक और दुर्भाग्य पूर्ण है। इस प्रक्रिया में बहुत सी प्रजातियां और बहुत से जीन विलुप्त हो चुके हैं और बहुत सी प्रजातियों का घ़ाटी में अंधाधुन्ध निषकर्षण हो रहा है। उदारहणार्थ ईन्धन तथा ईमारती लकड़ी की बढ़ती मांग के कारण बनों पर अत्याधिक दबाव पड़ रहा है और अब घाटी के अधिकांश भाग से वृक्ष प्रजाति की वनस्पति लुप्त प्रायः हो गई है। देव दियार तथा कायल के अच्छे वन होने का संकेत इन नंगे ढलानों पर पाये जाने वाले मुण्डियों से लगता है। अब दोनों प्रजाति घाटी के उपरी भाग में एक आध ही नज़र आते हैं। निचले ईलाकों में भी शंकुधर एवं चौड़ी पत्ति के पेड़ों की अन्धा धुन्ध कटाई हुई है और इनकी पुर्नस्थापना की कोशिशें बहुत सफल नहीं रही हैं। घाटी में पाये जाने वाली दुर्लभ जड़ी बूटियों जैसे शिंगलीं मिंगली, सेसकी, जराडियाना, कड़ू, पतीश, धूप, कशमल इत्यादि तथा कई अन्य प्रजातियों का अन्धाधुन्ध निष्कर्षण हो रहा है। इन के पुनर्जनन का कोई भी प्रयास नहीं किया जा रहा है। अब आवश्यकता है इन गतिविधियों पर रोक लगाने की, कड़े कानून बनाने का तथा सख्ती से अनुपालना कराने की। साथ ही आवश्यकता है इन के पुनर्जनन करने के लिए सतत अनुसन्धान करने की तथा कड़े प्रबन्ध नीतियों की। 'सीवक थार्न' (सल्ला) को लाहौल में विस्तृत वनी करण के लिए सब से उपयुक्त पौधा माना गया है। लाहौल में पाये जाने वाली प्रजाति को सफलता से पौधरोपण के लिए थोड़ी नमी की आवश्यकता रहती है, परन्तु योरोपीय जाति खुश्क पहाड़ों पर भी आसानी से उगाया जा सकता है। अतः इन दोनों प्रजातियों को मिला कर नई जाति को विकसित किया जाना चाहिए ताकि इन ऊँचे शुष्क क्षेत्रों को आसानी से हरित किया जा सके। इसी प्रकार जूनिपर की रोपणी प्रविधि को विकसित करने की आवश्यकता है क्योंकि इस महत्वपूर्ण पौधे को रोपणी द्वारा सफलता से उगाया नहीं जा सकता।

इसी प्रकार यहां पर पाये जाने वाले जीव जन्तुओं की विविधता में भी कमी आई है। इन दुर्लभ तथा इने गिने पाये जाने वाले प्राणियों के अस्तित्व को भी मानवीय गतिविधियों से खतरा पैदा हो गया है और वे भी विलुप्ति की और तेजी से अग्रसर हो रहे है असंख्य विलुप्त हो चुके हैं। इन प्रजातियों को भी बचाने, जैवविविधता को बचाए रखने के लिए कुछ विधि निर्माण कर तथा कुछ अभ्यारण्य एवं राष्ट्रीय उपवन बना कर संतुष्ट नहीं होना चाहिए। आवश्यकता है इन के प्राकृतावास की पुनः स्थापना की, स्थानीय लोगों के सहयोग प्राप्ति तथा उन को शिक्षित करने की। अधिकाधिक चिड़ियाघर, उपवन आरबोरेटा, शीशगृह, प्राणी विज्ञान उपवन तथा जीव परिरक्षित क्षेत्र इत्यादि की स्थापना की जानी चाहिए। इन स्थानों पर जैविकी अध्ययन तथा अनुसंधान होने चाहिए और इन भूखण्डों को जीन बेंक तथा जीन पूल के रूप में विकसित किए जाने चाहिए।

प्राकृतावास की पुनर्स्थापना के लिए स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा, उन के लिए रोज़गार के संसाधन जुटाने होंगे। ईधन के स्थान पर वैकल्पिक उर्जा स्त्रोतों का प्रयोग करना होगा जैसे:- सूर्य, जल एवं वायु ऊर्जा का अधिकाधिक उपयोग होने चाहिए। हमारे वनों का अन्धाधुन्ध कटान हुआ है, समय आ गया है कि अब इन गतिविधियों पर न केवल रोक लगाया जाए बल्कि इन नंगी पहाड़ियों का पुनः समुचित वनीकरण किया जाए। इस प्रयत्न में बहुआयामी प्रबन्ध तथा एकीकृत विकास परियोजना बनाए जाने चाहिए, जिस में ग्राम संस्थान जैसे पंचायत, युवक मंडल, महिलामंडल एवं आम जनता को अधिक से अधिक भागीदार बनाना होगा। ऊँचे क्षेत्रों के लिए सब से अधिक लाभप्रद प्रजाति देवी दयार एवं कायल है जिन को प्रकृति ने भी यहां के लिए उपयुक्त चुना है, इन प्रजातियों का विस्तृत पौध रोपण होना चाहिए।

मानवीय अस्तित्व के लिए पृथ्वी के धरातल पर बनी मिट्टी के कुछ इंच महत्वपूर्ण है। यह मिट्टी या मृदा करोड़ों साल के प्राकृतिक प्रयास और प्रक्रिया से बनी है। इस मिट्टी का ज़हरीले तत्व और रसायन पदार्थों से प्रदूषण का अभी लाहौल में खतरा तो नहीं है, पर धीरे-धीरे भूक्षरण द्वारा बह जाने का खतरा पिछले कुछ सालों से बढ़ गया है, जिस का मुख्य कारण भूमि के अनुचित उपयोग की रीतियां भी है। आलू की फसल पर्यावरण एवं पारिस्थितिक मित्र नहीं है परन्तु इस की खेती पिछले कुछ सालों से बहुत बढ़ गई है। लोगों ने अपने खेतों में ही नहीं बल्कि उस से बाहर ढलानदार वन भूमि में भी नजायज़ कब्ज़ा कर के खेती की है। ढोर डंगर की संख्या बढ़ जाने और अन्धाधुन्ध चराई के कारण ढ़लान नंगे हो गए हैं। ईन्धन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोगों ने पेड़ों और झाड़ीदार पौधों को जड़ से भी निकाल कर भूमि को नंगी कर दी है अतः अब आवश्यकता है इन गतिविधियों पर पूरा रोक लगाने का। वर्तमान भूमि उपयोग को बदल कर अच्छे और विकसित प्रविधि अपनाने होंगे 30 डिग्री से अधिक ढलानों पर कृषि 30 ग्राम अभ्यास को निषेध घोषित कर इस की अनुपालना को सुनिश्चित कराना होगा। इन ढलानों में भू संरक्षण के अन्य प्रविधि जैसे वटबन्दी इत्यादि न केवल महंगे होंगे बल्कि भूमि कटाव से भूक्षरण को और अधिक खतरा होगा। कृषि

और सिंचाई सज्जा की भी नियमित पड़ताल करने की आवश्यकता होगी। इसलिए आलू आदि फसलों की जगह मौसमी सब्जियों तथा होप्स आदि फसलों को अपनाया जाना चाहिए जिस से भूमि उत्पादकता और जल संरक्षण में भी सहायता मिल सके। बढ़ते हुए पशुओं एवं भेड़ बकरियों की संख्या को देखते हुए आवश्यक है कि पशुओं और भेड़ बकरियों की संख्या को कम किया जाए, तथा उन्नत और संकर जाति के जानवरों को केन्द्र सरकार की परियोजनाओं द्वारा बदलने की आवश्यकता है। साथ ही चरान्द और चरान सज्जे की पड़ताल की भी आवश्यकता है ताकि भूक्षरण और मृदा उपजाऊपन को सुरक्षित रखा जा सके तथा जैव पुन्ज को भी बढ़ाया जा सके। इसके साथी ही चारे के लिए उन्नत किस्म के घास को विकसित करने की आवश्यकता है इसके लिए स्थानीय स्थिति को ध्यान में रखकर अनुसन्धान करने होंगे। सतलुज और व्यास नदियों के जल ग्रहण क्षेत्र में भूउपयोग का सर्वेक्षण 1974 में भारतीय भूउपयोग एवं सर्वेक्षण संस्थान द्वारा किया गया है। इसी प्रकार रावी नदी के जल ग्रहण क्षेत्र में भी यह सर्वेक्षण 88-89 में हो चुका है परन्तु चनाव के जल ग्रहण क्षेत्र में यह सर्वेक्षण अभी होना है इसके अनुरूप भूसंरक्षण परियोजना बनानी होगी और विस्तृत कार्य पर्याप्त धन उपलब्ध करके करना होगा।

विकास एवं पर्यावरण का आपस में गहरा सम्बन्ध है। औद्योगीकरण, शहरीकरण और अन्धाधुन्ध वनों का कटान कर उद्योग को स्थापित करने से पर्यावरण का ह्रास और पारिस्थितिक असंतुलन हुआ है। लाहौल में उद्योग तो नहीं हैं परन्तु विकास के नाम पर सड़कों, भवनों एवं इसी प्रकार की और गतिविधियों के लिए भूमि का एवं वनों का अन्धाधुन्ध कटान हुआ है इससे लोगों को कुछ सुविधा और इलाके का विकास तो हुआ होगा, परन्तु इसी से करोड़ों टन बहुमूल्य मिट्टी भी बहकर घाटी से बाहर चली गई है और असंख्य पेड़ पौधे और वनस्पति भी कट गए हैं और कई प्रजातियां विलुप्त हो गई हैं। इन गतिविधियों पर काफी अंकुश लगाना होगा, और यहां की भौगालिक स्थिति को देखते हुए कम से कम गांव को जोड़ने वाले लिंक रोडस की जगह तार स्पेन तथा ट्रालियां लगवाये जाने की सम्भावनाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए क्योंकि अब बिजली आसानी से उपलब्ध हुआ करेगी। जहां पर सड़कें बनानी आवश्यक हों, वहां भूसंरक्षण की ओर विशेष ध्यान देने के लिए प्रावधान होना चाहिए, यानि धन का कुछ भाग भूसंरक्षण कार्यों के लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए। वन संरक्षण अधिनियम 1980 के तहत प्रतिपूर्वक पौदरोपण एक आवश्यक प्रावधान है। इन नियमों तथा प्रावधानों की अवहेलना खुले आम हो रही है। इन नियमों को विकास विरोधी अधिनियम का नाम दिया जा रहा है जो कि बिल्कुल आधार हीन है। इन प्रावधानों और नियमों से केवल यह सुनिश्चित कराना होता है कि किसी क्षेत्र में जो प्रस्तावित विकास कार्य है क्या उससे पर्यावरण का ह्रास तो नहीं होगा, अगर हाँ तो उसके प्रति क्या पग उठाए जाएं ताकि पारिस्थितिक संतुलन न बिगड़े। इसलिए सभी विभागों और संस्थानों को चाहिए कि वे इस अधिनियम को उचित स्थान दें और इन नियमों की अनुपालना को सुनिश्चित करें ताकि वन भूमि का अन्धाधुन्ध व्याह्रास न हो।

हिमाचल सरकार ने एवं केन्द्रीय सरकार ने वनों और वृक्षों के अवैध कटान, वन भूमि पर अवैध कब्ज़े, प्रदूषण को रोकने, वन्य प्राणियों को न मारने इत्यादि के लिए अनेक अधिनियम और कानून बनाये हैं, जिससे अवैध कार्य करने वाले दोषियो के खिलाफ सख्त कारवाई की सकती है। इन के क्रियान्वयन के लिए बन विभाग एवं पुलिस को भी समुचित शक्तियां प्रदान की हैं, परन्तु व्यावहारिक तौर पर देखा गया है कि वनों और वन भूमियों के विस्तार के कारण वन कर्मचारियों को हर स्थान पर पहुंच कर जुर्म को देख पाना बहुत कठिन होता है। इसके अतिरिक्त जब भी अपराध होता है तो उसके लिए मौके के गवाह को वन में ढूंढना कठिन हो जाता है फलस्वरूप प्रायः केस अदालत में असफल हो जाता है और दोषी बगैर सज़ा पाये छूट जाता है। वन कर्मियों का अधिकतर न तो पंचायत साथ देती है और न ही जनता का सहयोग प्राप्त होता है क्योंकि प्रायः इन दोनों का अपना निहित स्वार्थ छुपा होता है इन्हीं कारणों से कई स्थानों पर इन परिस्थितियों को ध्यान में रख कर इकोटास्क फोर्स का गठन किया गया है ताकि यह संगठन वनीकरण का काम भी करे और अपराध को रोकने में सहायता प्रदान करे। इसी प्रकार कई ज़िलों में पर्यावरण वाहिनी का भी गठन किया गया है ताकि जहां पर भी कानून का उल्लंघन हो तो यह तुरन्त कदम उठाएं। इसलिए स्थानीय लोगों तथा संस्थानों जैसे पंचायत, महिला मंडल, युवक मंडल इत्यादि को सक्रिय रूप से सम्मिलित कर उनका विश्वास पाना होगा ताकि इस प्रकार के अपराधों के खिलाफ तुरन्त कार्यवाही की जा सके। इसके साथ इन संस्थानों को एवं आम जनता को भी अपने अधिकारों के साथ ज़िम्मेवारियों को भी पहचानना होगा ताकि इन समाज विरोधी तत्वों का डट कर मुकाबला किया जा सके।

पहाड़ों में उपयुक्त भूउपयोग के तरीकों को हमारे अनुसन्धान केन्द्रों एवं कृषि और वानिकी विश्वविद्यालयों के प्रयास से काफी विकसित किया जा चुका है। अब आवश्यकता है एकीकृत भूविकास का क्रियान्वयन करने की जिसमें हमारे वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों और स्थानीय लोगों का बराबर का सहयोग हो। भूक्षरण, अधिक चरान, कृषि अनुत्पादकता, बेराज़गारी, वनों का कटान, वन्य प्राणियों का ह्रास इत्यादि जितनी भी समस्याएं हैं वे परस्पर

जुड़ी हुई हैं। इसीलिए वानिकी, भूसंरक्षण आदि समस्याओं के लिए एकीकृत परियोजनाएं बननी चाहिए जिसमें सभी विभागों और जनता का संयुक्त प्रयास प्राप्त हो ताकि पर्यावरण का व्याह्रास रूक जाए और पारिस्थितकीय पुर्नस्थापना हो जाए।

पर्यावरण की समस्याएं हर स्थान पर दो प्रकार की होती हैं एक स्थानीय और दूसरी वैशविक। इन दोनों समस्याओं का भी आपस में काफी सीमा तक सम्बन्ध होता है। स्थानीय समस्याओं का समाधान निकालने के लिए हम बहुत सीमा तक सक्षम हैं अगर सामूहिक प्रयास करें। लाहौल में सभी समस्याएं अभी तक स्थानीय हैं क्योंकि यह समस्याएं अपनी विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों और हमारी अज्ञानता के कारण बिल्कुल अनूठी हैं। अत: इन समस्याओं का समाधान भी बहुत कुछ हमारे अपने हाथ में है अगर हमारे अन्दर कुछ करने की इच्छ शक्ति हो। इसलिए आईए, हम सब मिल कर अपने और आने वाली पीढ़ी के भविष्य के बारे में सोचकर प्रकृति को और न लूटें, और लाहौल की प्रकृतिक धरोहर एवं पारिस्थितकीय संतुलन को सुरक्षित रखें। □

'याद'

मैं तुम्हारी याद में एक गीत गाने आ रहा हूँ
फ़िज़ाओं साथ देना मैं गुनगुनाने जा रहा हूँ
जीवन के कोरे पृष्ठों पर,
मैंने भी कुछ गीत लिखे हैं।
विश्वासों के महानगर में,
इन्हें लुटाने जा रहा हूँ।
आँसुओ साथ देना मैं मुस्काने जा रहा हू।
अब मैं यौवन के मधुवन में
कलियों सा मुरझा रहा हूँ
सामने रो रही है तनहाईयां
बेखबर सो रहा हूँ
ऐ-खुदा तेरी याद के दीपक जलाने आ रहा हूं।
गीत गंगा बहा कर देख लो
किस कदर जी रहा हूँ
मेरी खमोशी से तो पूछ लो,
बिन मंजिल बहे जा रहा हूँ
प्रतीक्षा की पीड़ा में अश्रु मोती माला पिरोने आ रहा हूं,
फ़िज़ाओ साथ देना मैं गुनगुनाने जा रहा हूँ। □

सुरेश कुमार राणा 'रवि'

पर्यटन स्थल-थान पट्टन

जगत पाल शास्त्री
हाई स्कूल मालंग।

यहां कमनीय कुशल काष्ठकला से कलित मुद्रित मुद्रा मुखी ममतामयी महामाया, "महिषासुर मर्दिनी'' का माननीय मन्दिर मण्डित है।

उदयपुर से उत्तर की ओर 47 कि० मी० के विस्तृत भूभाग पर बसी है मधुमस्त मज़ाकी महा मानवों की "मियाड़'' नामक महानगरी। पर्यटन की दृष्टि से यह घाटी ललित लाहौल की ललाटिका है, वधूटिका, विशिष्ट वाटिका है, काश्मीर, स्विटज़रलैण्ड है। इसी मियाड़नाले के अन्तिम 10 कि० मी० के धरातल पर स्थित है अभीष्ट-वरिष्ठ-शिष्ठ, प्रसिद्ध पर्यटन स्थल "थान पट्टन''।

उदय पुर से वाञ्छित स्थल की ओर प्रस्थान करते ही सबसे पहले साक्षात्कार होता है -"मटमैले मियाड़ नाले से''-जो कुम्भकरणी निद्रा से जागे हुए मदमस्त महिषासुर की भान्ति अट्टहास करता हुआ, डकारता, गुहारता, हुंकारता हुआ प्रेमी पथिक की पर्यटन परीक्षा लेता है।

विशाल रूण्ड-मुण्ड-तुण्ड पर्वतराज गम्भीर घोष करता हुआ, ललकारता, दहाड़ता, चिंघाड़ता, प्रताड़ता हुआ मानों पर्यटक के साहस की समीक्षा कर रहा हो।

शैल शिखरों से खिसके हुए हिम खण्ड "विकराल काल कराल, मुंह खोले, भंवर घोले, बम विस्फोट की भान्ति अहंभाव को मिटाने वाला'', गन्तुक के धैर्य को धराशाही कर देता है, दिल को दहला देता है।

7 कि० मी० की इस दर्दीली, पत्थरीली, बर्फीली, गर्वीली, भयानक मृत्यु तुल्य यात्रा करने के बाद आता है मियाड़ वादी का 5-6 घरों वाला पहला गांव "सकोली'। यहां से शुरू हो जाते हैं। लम्बे लम्बे सघन दयार, देवदार, चीड़ के बाल-युवा-वृद्ध वृक्ष जो 8-9 घरों वाले अन्तिम गांव 'खन्जर तक नतमस्तक होकर, भाव विभोर होकर, अपनी पत्र छाया, से सटा - लटा छटा से पर्यटकों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

हिमशिखरों से नि:सृत निर्झर पिपासाकुल पयर्टकों की पिपासा शान्त करते हैं, आवश्वस्त करते हैं।

विविध वनौषधियां अपनी दिव्या मादकता से थके हारे पाथिकों को सहज स्फूर्ति प्रदान करती हैं।

खंजर गांव से 12 कि० मी० का रास्ता शेष जिसमें शुरू के 9 कि० मी० में कोई बस्ती नहीं-प्राणी नहीं, एकदम एकान्त, शान्त, कान्त, निभ्रान्त ध्वनिहीन झरने, मूक पत्थर, स्थिर पेड़, कुसुमित फूल "सुनसान के ये सब सहचर हैं''- पर्यटक प्राणी के। थोड़ी सी चढ़ाई-जिज्ञासा होती है कि इस पहाड़ी के आगे कैसा परिवेश है? क्या है?-कुदरत का कैसा करिश्मा है?

इस छोटी सी पहाड़ीनुमा रीड़ी को पार करने पर आता है वह प्रेष्ठ-श्रेष्ठ-अभीष्ट पर्यटन स्थल "थान पट्टन''। 12000 फुट की ऊँचाई पर स्थित प्रकृति नदी का रंग मंच। लावण्यता-मोहकता, भव्यता, दिव्यता का दिग्दर्शन। सुदूर तक फैला हुआ पुष्पोद्यान। जहां तक भी नज़र जाती है समतल उपत्यका। श्वेत हिम शिखर की गोदी में बसा यह-आनन्दपुर, बिलासपुर। पर्यटक के पदार्पण करते ही रंग बिरंगी तितलियां उड़ना नाचना शुरू कर देती हैं; हंसते, महकते, इठलाते फूल अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं। गद्दियों की धवल, विमल साहस्त्रों भेड़ें नीरूघास चर रही होती हैं। मियाड़ घाटी के लगभग 15 गांवों के 1000 घोड़े चूरू-याक, गऊएं स्वच्छन्द विचरण कर रहे होते हैं। निडर रसिक आशिक चन्चल चन्चरीक। पुष्प ओष्ठों का निरन्तर चुम्बन कर रहे होते हैं। मक्खन सी स्निग्धता, मधुप्याले सी मादकता-।

इस पर्यटन स्थल के अन्तिम छोरे में एक पवित्र "पाण्डुसरी'' नामक तालाब है। यहीं एक "लम्बा की गुफा'' विद्यमान है।

इस भूभाग से पर्वत त्रृंखलाएं कुछ नत होना शुरू हो जाती हैं। ऐसा लगता है मानो पर्वत राज मौन मन्त्र मुग्ध होकर पथिकों को उनके साहस पर शुभाआशीर्वाद दे रहा हो, मियाड़ नाला शान्त कलकल निनाद कर पर्यटकों की गौरव गाथा गा रहा हो।

सन्ध्या वेला में अपने डेरों में बैठे शर्मीले नवजात छैलछबीले छागशिशु, मासूम मेमने माता से मिलने को आतुर, करूण क्रंदन करते हुए सप्त स्वर लहरियों से वातावरण को भावविभोर सरावोर कर देते हैं। वात्सल्य रस का संचारी भाव हो जाता है।

साहित्यिक रसों का कलश है यह "थान पट्टन'' बुद्ध की वीतरागता, जीसस की तटस्थता, कृष्ण की चंचलता, बजरंगबली की वीरता, मुहम्मद की मुहब्बत का आध्यात्मिक मन्दिर है थान पट्टन पर्यटन स्थल।

धन्य है लाहौल की लोहित माटी
धन्य है मियाड़ की परिपाटी
धन्य है थान पट्टन पर्यटन स्थली घाटी

कला का स्वरूप व लाहौल में इस की स्थिति

सुख दास ठोलंग

किसी भी राष्ट्र, जाति एवं लोगों के सांस्कृतिक उत्थान का मापदण्ड उस की कला होती है। वास्तव में कला मानव संस्कृति की उच्चता का द्योतक है। यह मानव को उस की जाति, धर्म, राष्ट्र की दृष्टि से विखण्डित नहीं करती बल्कि जोड़ती है। यह अनेकता में एकता के दर्शन कराती है। यह एक स्वर्णिम सूत्र है; जिस में 'सार' विभिन्न रंगों के मणिकों को गूंथ एक सुन्दर माला का रूप धारण करता है। प्रसिद्ध रूसी भारतीय कवि कलाकार निकोलस रोरिक ने कला के सम्बन्ध में कहा है।

सौन्दर्य से हम संयुक्त हैं, एक हैं,

सौन्दर्य द्वारा ही हम उपासना करतेहैं

और सौन्दर्य से ही हम विजयी होते हैं।

अर्थात् हम अपनी बुराईयों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

सौन्दर्य प्रियता- बाह्य एवं भीतरी - एक ऐसी सूक्ष्म भावना जगत है जो मनुष्य को उस के जीवन की ऊबड़ -खाबड़ भूमि से ऊपर उठा कर आनन्द और समरसता की ओर ले जाती है। आनन्द जो उस का निज है, सहज स्वरूप है, कला द्वारा उस का रसास्वादन अधिकाधिक मात्रा में होता है। इसीलिए कला को सत्यं, शिवं, सुन्दरं कहा गया है।

संत कलाकार सोभासिंह ने कला में 'सुन्दर' को प्रथम स्थान दिया है। क्यों कि सुन्दर विचार में से सुन्दर कृत्य होगा और सुन्दर कृत्य से सर्वत्र शांति होगी, सुख होगा और यहीं से भगवान बुद्ध की करूणा, महात्मा गान्धी की अंहिसा और उपनिषदों का 'वासुदेव कुटुम्बकं' का अर्थ सार्थक होगा दार्शनिक प्लेटो ने सौन्दर्य का गान इस प्रकार किया है।

"सुन्दर रूप से सुन्दर विचार

सुन्दर विचार से सुन्दर कर्म

सुन्दर कर्म से पूर्ण सौन्दर्य''

पूर्ण सौन्दर्य से अभिप्राय: समस्त जगत में अर्थात् समस्त प्राणी मात्र में आत्मीयता की परिकल्पना है। यही वह मूल मन्त्र है जिस में स्थाई शान्ति निहित है। कला पूर्ण सौन्दर्य की चाहना है। आनन्द की खोज है। एक पवित्र यात्रा है आनन्द के तलाश की।

प्रकृति की सुरम्य घाटी लाहौल-स्पिति में भी यह कला चित्रकला और मूर्तिकला के रूप मे उपलब्ध है। इन दो कलाओं को घाटी में धार्मिक दृष्टि से उच्च स्थान प्राप्त है। यहां के गोम्पाओं की भित्ति चित्र, मन्दिरों एवं गोम्पाओं में प्रस्थापित देवी देवताओं की मूर्तियां, उदयपुर के प्रसिद्ध देवी मन्दिर (मिर्कुला देवी) की दीवारों और छतों पर उकेरित काष्ठ कला कृतियां कला परम्परा के भव्य नमूने हैं। 'कूँ' और 'खोगला' जैसे त्यौहारों के अवसर पर 'बराज़ा' चित्रण के रूप में लोक कला की एक झलक भी यहां विद्यमान है। पर इन उपरोक्त कलाओं का महत्व मात्र धार्मिक एवं त्यौहारों के क्षेत्र तक सीमित होने के कारण अधिक व्यापक नहीं हो सका है।

यह सन्तोष की बात है कि कला क्षेत्र को विस्तृत करने हेतु स्थानीय प्रशासन और कलाकारों द्वारा पग उठाये जा रहे हैं। गत वर्ष 1993, 15 अगस्त के राष्ट्रीय स्वतन्त्रता दिवस समारोह के अवसर पर जिला उपायुक्त कला प्रेमी डॉ० रत्न लाल विसोत्रा के आह्वान पर ज़िला मुख्यालय केलंग में चित्रकला प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शनी में लाहौल घाटी के चित्रकारों के विविध शैलियों के चित्र प्रदर्शित किए गए; जिन्हें कला प्रेमियों और जन साधारण ने बहुत सराहा। निश्चय ही कला के क्षेत्र में लाहौल के इतिहास में यह एक प्रशंसनीय पग है। अतः कलाकारों को प्रोत्साहित करने हेतु और जनसाधारण को कला के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए समय-समय पर इस तरह की प्रदर्शनियों का आयोजन परमावश्यक है। □

'योर' एक पर्व जोबरंग का

सतीश चन्द्र 'बुगी'

हिमाचल प्रदेश में 13,835 वर्ग कि० मी० में फैला हुआ ज़िला लाहौल-स्पिति का अपने संस्कृति व पर्वो के कारण विशेष महत्व है। लाहौल घाटी के गांव जोबरंग में एक पर्व मनाया जाता है जिसे 'योर' कहा जाता है। यह पर्व फागली के 15 दिनों बाद पूर्णिमा के दिन से आरम्भ हो जाता है। इस पूर्णिमा की शाम को गांव के पुजारी दो व्यक्तियों के साथ, जिन्हें "नम्ज़' कहा जाता है गांव में सभी के घरों में जाते हैं और परिवार के मुखिया को उन के परिवार की खुशहाली व स्वास्थ्य की कामना करते हैं। योर के पर्व में लकड़ी के मुखोटों को पहना जाता है, जिन्हें 'मोहरा' कहा जाता है। गांव के लोग बड़ी श्रद्धा से इन की पूजा करते हैं। पर्व के पहले दिन सूर्य उदय होने के साथ-साथ एक व्यक्ति 'मोहरा' को पहन कर गांव के बीच से गुजरता है जिस का गांव के लोग धूप व अगरबतियां जला कर स्वागत व पूजा करते हैं। यह 'मोहरा' ढोलकी व बांसुरी वादक के साथ नजदीक वाले गांव 'रापे' तक जाता है। इस के बाद और तीन 'मोहरों' को अपने स्थान से निकाल कर इन में रंग भर कर सजाया जाता है। गांव के बीच में 10 से 12 फुट लम्बा बर्फ का एक स्तम्भ सा बनाया जाता है। दोपहर को पूरा गांव बांसुरी व नंगाड़ों से गूंज उठता है। 'मोहरा' पहनने वाले तीनों व्यक्तियों सहित गांव के प्रत्येक घर से एक एक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की टोपी जो लगभग एक फुट ऊंची व ऊपर से तीखी और आंखों को छोड़ कर पूरा चेहरा ढका रहता है, को ले कर इकट्ठा हो जाते हैं। इस टोपी को 'चोग' कहा जाता है। नगाड़े की धुन के साथ-२ 'मोहरा' पहने तीनों व्यक्तियों का अनुसरण करते हुए 'चोग' पहने हुए सभी व्यक्ति बर्फ के स्तम्भ के पास पहुंचते है। 'जय महाराज' कहते हुए सभी इस बर्फ के स्तम्भ का चक्कर काटते है और 'मोहरा' पहने हुए व्यक्ति अपने खेल व करतबों से दर्शकों का मन मोह लेते हैं। शाम को यहां पर खूब नाच गाना भी चलता है। गांव के लोग दर्शकों को आदरपूर्वक मेहमाननवाज़ी के लिये ले जाते हैं। योर के दूसरे दिन 'मोहरा' द्वारा साल भर की फसल, बीमारी, मौसम आदि की भविष्यवाणियाँ भी की जाती है। इस प्रकार यह 'योर' का पर्व तीन दिन तक नगाड़ों के गुंजन के बीच में मनाया जाता है। इस पर्व में लहौल-स्पिति की परम्परा के अनुसार लुगड़ी, व शराब का प्रयोग प्रत्येक घर में बारी-बारी जा कर किया जाता है। आधुनिकता की इस दौड़ में इस सांस्कृतिक धरोहर के अस्तित्व को खतरा बना हुआ है। अत: युवा वर्ग को चाहिए कि आधुनिकता के साथ-साथ इस सांस्कृतिक धरोहर के अस्तित्व को बनाए रखें। □

पत्थरों को तोड़ा है

पत्थरों को तोड़ा है पर्वतों को फोड़ा है
बनाया मकान हमने ईंट लहू जोड़ा है
कोठी तुम्हारी....झोंपड़ी हमारी
चरखा घुमाया है, सूत बनाया है
कपड़ा बनाते अपनी नसों नस को खींचा है
कपड़ा तुम्हारा ....काम हमारा
धरती को खोदा है, बीज को बोया है
धान उगाया हमने लहू अपना सींचा है
फसल तुम्हारी ... भूख हमारी
मिल गया जवाब हमें - हां
मिल गया जवाब हमें, उठाया हथियार हमने
शिक्षा के रास्ते पे चलने लगे हम सब
हार तुम्हारी .... जीत हमारी □

हॉप्स व्यापार का इतिहास

अनुवाद : घरसंगी

हॉप्स उत्पादकों का कष्ट फसल लेने व उसे सुखाने तक ही खत्म नहीं होता बल्कि उन्हें यह भी चिन्ता रहती है कि उनका उत्पादन सही दामों में बिके। दूसरे फसलों की अपेक्षा हॉप्स की खपत इसलिए नहीं बढ़ती कि इसके दाम घटा दिए गए हैं बल्कि ब्रीवरीज़ की खपत इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितनी मात्रा में बीयर बेचते हैं। अगर हॉप्स सस्ते दामों में मिले तो यह हो सकता है कि इसकी भविष्य के लिए ज़्यादा मात्रा में खरीद हो लेकिन इससे आनेवाले साल का मार्केट खराब रहेगा या घटेगा ही।

दूसरी तरफ ब्रीवरीज़ के लिए यह आवश्यक है कि इतनी मात्रा में हॉप्स लें जिससे वह उतना बीयर बना सकें जिसे वह बेच सकते हैं क्योंकि इस सूरत में हॉप्स की सप्लाई कम हो तो वह ज़्यादा कीमत देने को तैयार रहता है जिससे उसकी जरूरत पूरी हो।

कोल्ड स्टोर के आने से हॉप्स का जीवन बढा है जिससे ब्रीवरीज रिज़र्व स्टॉक रख सकते हैं और जिससे उन्हें किसी विशेष साल के उत्पादन के ऊपर निर्भर रहना नहीं पड़ता है। इससे भी विशेष बात यह है कि हॉप्स का पाउडर व एक्सट्रेक्ट रूप में विधायन होने से इसे और भी ज्यादा समय तक बिना किसी हानि के रखा जा सकता है। तब भी मण्डी काफी मात्रा में सप्लाई के हिसाब से ऊपर नीचे जाता रहा है। और अक्सर यह देखा गया है कि कम उत्पादन की स्थिति में उत्पादकों को अच्छे दाम मिले हैं। क्योंकि ज़्यादा दाम कम उत्पादन की क्षतिपूर्ति कर लेता है।

यह अभी भी साफ नहीं है कि पुराने जमाने में हॉप्स का व्यापार कैसे होता था हालांकि पुराने जमाने से व्यापारियों के इस व्यापार में होने का संदर्भ मिलता है। यहाँ पुराने रिकॉर्ड यह दर्शाते हैं कि इंग्लैंड में बहुत से भागों में हॉप्स आयात किय जाता था। हंग्लैंड में हॉप्स का घरेलू व्यापार मेलों में किया जाता था। और अठारहवीं सदी में स्टूरब्रिज़ जो केमब्रिजशायर में है, हॉप्स व्यापार का महत्वपूर्ण केन्द्र था। उस समय भी हॉप्स का व्यापार सख्त नियन्त्रण में होता था ताकि टेक्स को लादा जा सके। 1710 ई० के ऐक्ट में आयातित हॉप्स में 3 पैसे प्रति पाउन्ड लगान लगाया जाता था और 1734 ई० में इंग्लैंड में उत्पादित हॉप्स पर 1 पेन्नी प्रति पाउन्ड लगान था और यह लगान 1862 ई० तक चलता रहा।

हालांकि इंग्लैंड कभी काफी मात्रा में हॉप्स निर्यात करता था मगर विश्व बाज़ार में इस का खास दखल नहीं रहा। ग्रॉस (1900)

हॉप्स व्यापार जर्मनी, आस्ट्रिया व यू० एस० ए० के पास रहा और ज़्यादातर उन व्यापारियों के हाथ रहा जो किसान व ब्रीवर के बीच एजेंट का काम करते थे, क्योंकि ब्रीवर भी अपनी सहूलियत के लिए एजेंट से माल खरीदते हैं न कि किसान से।

विश्व का सबसे बड़ा हॉप्स मार्केट न्यूरेनबर्ग है जहाँ हर साल फसल का सबसे ज्यादा भाग जाता है और यह हॉप्स व्यापारी, एजेंटस व डीलरों का गढ़ है। इनमें ज़्यादातर के पास अपना ही गोदाम व कोल्ड स्टोर है और यहाँ अस्थाई भंडारण के लिए भी गोदाम उपलब्ध हैं। जो रोल हॉप्स व्यापार का जर्मनी में न्यूरेनबर्ग का है वह आस्ट्रिया में सांज़ का है। हालांकि व्यापार का परिमाण (Volume) न्यूरेनबर्ग से कम है क्योंकि सप्लाई घरेलू है तब भी यहां काफी मात्रा में व्यापार होता है विशेषकर अच्छे किस्म के हॉप्स में। इसके अतिरिक्त दूसरे हॉप्स मार्केट लंदन, न्यूयॉर्क व वारसा व छोटी मात्रा में व्यापार उत्पादक ज़िलों में ही होता है।

जर्मन व्यापारियों ने हमेशा ही हॉप्स के विश्व व्यापार में अपना दबदबा रखा है जैसे रेज़र (1987) निम्नलिखित वर्णन करते हैं:

रिवाज़ से ही जर्मनी मे बियर की खपत बहुत ज़्यादा है और एक सधा हुआ ब्रिऊइंग इंडस्ट्री है जो जर्मन हॉप्स की रीढ़ की हड्डी है। जैसे-जैसे विश्व में बियर लोकप्रिय होता गया हर देश मे ब्रीवरीज़ खुलते गए। और यह सिलसिला अभी खत्म नहीं हुआ है। जर्मनी इन घटनाओं का लाभ अपने देश से बाहर ब्रिऊइंग इंडस्ट्रीज़ खोलकर नहीं उठा सका जैसे नीदरलैण्ड ने उठाया, फिर भी इसने ब्रिऊइंग तकनीकी और तकनीकी ज्ञान को निर्यात कर काफी लाभ उठाया। विश्व के बहुत सारे ब्रीवरीज़ जर्मन लागर बियर के प्रकार के बीयर का ही उत्पादन करते हैं। इनमें बहुत सारे जर्मनी से आयातित मशीन व जर्मन तकनीशियनों को रखते हैं या फिर तकनीशियनों को जर्मनी में तकनीकी शिक्षा दिलवाते हैं। यह भी स्वाभाविक है कि वह कच्चे माल या हॉप्स के लिए जर्मनी की तरफ ताकते हैं जोकि अच्छी क्वालिटी के बियर के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार जर्मन हॉप्स ने इस

गुणवत्ता की विश्व व्यापी छवि बनाई जोकि उद्योग के विस्तार के लिए एक स्थायी जड़ है और यह एक विश्व व्यापी डीलरशिप को पैदा कर सकता है। कारगर व बड़े पैमाने में प्रोसेसिंग साधनों को स्थापित किया गया जो घरेलू व् बाहरी मार्केट की ज़रूरत को पूरा कर सकें, जोकि आयतन मे कम हो व क़ठिन परिस्थितियों में भी गुणवत्ता न खोए।

इंग्लैंड में एक स्टेण्डर्ड एग्रीमेंट किया गया जिसके अन्तर्गत उत्पादकों का हित (Interest factor) द्वारा व ब्रीवर्ज़ का व्यापारियों द्वारा देखा जाता था और दोनों कमीशन पर काम करते थे। और दूसरी तरफ जर्मनी में एक ही बिचोलिया जोकि व्यापारी के रूप में किसान व ब्रीवरीज़ के मध्य काम करता था। ब्रीवरीज़ आमतौर पर एजेंट से ही डील करना पसन्द करते हैं यह शायद सहूलियत के लिए हो या फिर व्यापारी उनको माल उधार भी दे देता था। ग्रॉस (1900) फिर भी ग्रॉस उत्पादक व ब्रीवरीज़ के बीच बहुत सारे मध्यस्थों जैसाकि स्थानीय डीलर, खरीदने वाला, उनका एजेंट, व्यापारी, कन्साइन्मेंट निर्यात घर के लिए और कमीशन एजेंट्स और डीलरों का मुनाफ़ा कमाने का तरीका कि जब खरीदना हो तो अधिक उत्पादन की बात करते हैं व जब बेचना हो तो कम उत्पादन की बात करते हैं को लताड़ता है। इंग्लैंड का उत्पादक इस सूरत में अपने Factor द्वारा अच्छे में रहते हैं क्योंकि वह उत्पादक की अपेक्षा मार्केट से ज्यादा परिचित रहता है।

अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के लिए जर्मनी में उत्पादकों ने अपने आपको सभा में संगठित करना शुरू किया और इस तरह की पहली सभा फोरेनबेक ज़िला हर्सब्रुक में केलबेर नाम के पादरी ने बनाया। यह सभाएँ बाज़ार में जाने वाली हॉप्स की गुणवत्ता को देखती व दामों को निश्चित करतीं। डीलरों से प्रतिस्पर्धा करने के लिए तथा बावेरियन गवर्नमेंट उन्हें सबसिडी व ब्याज रहित ऋण द्वारा मदद करती। आजकल हर एक हॉप्स उत्पादक क्षेत्र के पास अपनी एक सभा है जो वरबेण्ड डयूटयर हाफेन्पलान्ज़र के छत्रछाया में काम करती है। (कोहलमान व कास्नर,1975)

इस तरह की सभी सीज़न से सीज़न तक के अनिश्चित पैदावार से पैदा हुई कीमत में उतार चढ़ाव पर बहुत कम असर कर पातीं। इंग्लैंड में सन् 1914-18 ई०, विश्व युद्ध के दौरान हॉप्स कन्ट्रोल के तहत पैदावार पर कड़ा नियंत्रण था। जब यह खत्म हुआ तो हॉप्स इन्डस्ट्री को बचाने के लिए 4 पौंड का ड्यूटी प्रति cwt लगाया गया लेकिन इसके बावजूद आने वाले सालों में विपणन में अड़चनें आती रहीं। सन् 1925 ई० में स्वयंसेवी सहकार इंगलिंश हॉप्स ग्रोअर्स् लिमिटेड के तहत जो 90 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते थे, बिक्री को नियन्त्रित करने का प्रयास किया गया। लेकिन यह प्रयास 1924 के ढेर सारे रह गए फसल व 1925-26 के अथाह पैदावर से ग्रसित रहा। इसके मेम्बरों ने हॉप्स की खेती में कमी करने का फैसला किया लेकिन 10 प्रतिशत नॉन-मेम्बरों ने हॉप्स की खेती बढ़ा दी और इस तरह यह संस्था ढह गई।

सन् 1931 में एग्रीकल्चर मारकेटिंग एक्ट आ जाने से सहकारी प्रक्रिया को कानूनी सहायता मिली और हॉप्स इन्डस्ट्री ने सबसे पहले इसका फायदा उठाया। हॉप्स मार्केटिंग स्कीम सन् 1932 में क्रियान्वित हुआ जिसके तहत सभी उत्पादकों को अपनी फसल मार्केटिंग बोर्ड के द्वारा बेचना मान्य था जबकि बोर्ड को कोई भी इंगलिश हॉप्स लेना मान्य था जोकि उत्पादक के साथ उत्पादकों को उनके पिछले साल के फसल के तहत कोटा दिया जाता था जोकि ब्रीवरीज़ के आवश्यकतानुसार हर साल बदलता रहता था। उत्पादन मूल्य सर्वेक्षण द्वारा देखा जाता और इसी आधार पर फसल की कीमत तय होती। इस हिसाब से इंग्लैंड की कीमतों का अन्तर्राष्ट्रीय कीमतों व तरीके से कोई सम्बन्ध नहीं था और यह इसलिए सम्भव था क्योंकि यहां पर हॉप्स के आयात पर प्रतिबंध था।

यह स्कीम इस बात को सुनिश्चित करता था कि उत्पादक व ब्रीवर हॉप्स की कीमतों के खतरनाक उतार चढ़ाव से बचे रहें और इससे उन्हें आगे के लिए बज़ट बनाने की हिम्मत होती। लेकिन दूसरी तरफ इससे इंगलिश व्यापारियों का बाहरी देशों के मार्केट में घुसपैठ अनिश्चित हो गया क्योंकि वह अपनी कीमतें फसल आने के कुछ महीने बाद ही तय कर सकते थे जबकि तब तक अन्यत्र सभी चीज़े तय हो जाती थीं।

इंग्लैंड के यूरोपियन आर्थिक कम्युनिटी में दाखिल होते ही हॉप्स का मार्केट कम्यूनिटी के बीच में खल गया और अब आयातित हॉप्स सप्लाई में प्रतिबन्ध नहीं लगा सकते इस तरह यहां का उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय मुकाबले में डाल दिया गया। फिर भी इंगलिश बोर्ड ने कुछ साल अपना कार्य जारी रखा। जिसमें सभी उत्पादक इसके मेम्बर रहे और इसने अपना नाम बदलकर इंगलिश हॉप्स लिमिटेड रखा जबकि रेगूलेशन के हिसाब से यह स्वयंसेवी संस्था ही रही। कोई इंगलिश ब्रीवरीज इसी से पुराने तरीके से तय कीमत पर ह़ॉप्स खरीदते रहे लेकिन आपसी हितों का टकराव होने से इसमें विघटन हो गया और उत्पादकों ने अपने आपको कई उत्पादक घटकों में बांट दिया हालांकि यह अभी भी सबसे बड़ी संस्था है। इस तरह उत्पादक सहकार इंगलिश हॉप्स लि० बनने से फेक्टर्ज़ का काम न के बराब रह गया मगर ये फिर भी हॉप्स सेम्पल के मूल्यांकन में उनकी अगुवाई करते रहे।

यू० एस० ए० में भी घटनाओं का क्रम कुछ इसी प्रकार है। सन् 1937 ई० में उन्होंने

एग्रीक्लचर मार्केटिंग एग्रीमेन्ट और आर्डर ऑपरेटिड फसल को 1932 की कीमतों पर सख्ती से वश में लाना आदि था। सन् 1942 के बाद कोई अतिरिक्त उत्पाद नहीं था जिसे रोका जाए, इस तरह सन् 1945 में एग्रीमेन्ट आर्डर को खत्म कर दिया गया। सन् 1949 में ज़रूरत से ज्यादा फसल होने से सन् 1949 में इसे फिर से लागू किया गया (Productive Team Report, 1951) जिसे फिर 1952 में खत्म कर दिया गया। एक बार फिर बाज़ार अमरीकन हॉप्स के अन्तर्गत लगी भूमि व अत्यधिक उतार चढ़ाव को देखते हुए आर्डर को सन् 1966 में नवीकृत किया गया और फिर 1986 में खत्म कर दिया गया। इंगलैंड व अमरीकी स्थितियों में फर्क सिर्फ यह था कि यू० एस० ए० में तबदीली उत्पादकों की इच्छानुसार हुआ जबकि इंग्लैंड में बोर्ड के खत्म होने का कारण राजनीतिक बदलाव व इसका मेम्बरान के बीच में लोकप्रिय न होना था।

इंगलैंड व यू० एस० ए० में मार्केट स्कीम इसलिए असरदार रही क्योंकि इनके पीछे कानून का साथ था जबकि स्वेच्छिक सहकारी स्कीम अपने देश के ही नॉन मेम्बरों के कार्यकलापों की वजह से फेल हुई। इसी तरह की कठिनाई मार्केटिंग स्कीम में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दूसरे देशों के कार्यकलापों द्वारा भी आई, जहां उत्पादक किसी भी अवरोध की आजादी की वज़ह से लाभ लेने में चुस्त रहे। यू० एस० ए० में हॉप्स उत्पादन हर समय नियन्त्रित रहा और अमरीकन उत्पादकों को कीमत की बढ़ोतरी मिली लेकिन इससे दूसरे स्त्रोंतों से हॉप्स कीमत में काफी प्रतियोगी बन गया और बाहर से कुछ देश अमरीकन उत्पादकों के मार्केट को हासिल करने में सफल हुए। अमरीकन नि:सन्देह तौर पर और बिक्री खोते अगर बहुत सारे ब्रीवरज़ अपने आपूर्ति के स्त्रोत को बदलने में न झिझकते क्योंकि एक कारण तो यह है कि वह जो हॉप्स इस्तेमाल करते हैं उसे बदलना नहीं चाहते लेकिन अन्ततः वह यह समझते हैं कि भविष्य के निश्चित सप्लाई को देखते हुए किसे मदद करनी चाहिए, फिर भी, बिना अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के यह कहना अनिश्चित है कि एक देश में उत्पादन पर नियन्त्रण करना उत्पादकों के मसलों का स्थाई हल होगा या नहीं।

यूरोप में यूरोपियन आर्थिक समुदाय ने मेम्बर देशों में हॉप्स उत्पादकों को मदद करने के लिए कई तरीकों को अपनाया है। आर्थिक मदद देकर यह कोशिश की गई है कि एक उत्पादक की आय एक तर्कसंगत स्तह से नीचे न आए, लकिन यह योजना खास संतोषजनक नहीं रही। अगर एक देश में उत्पादक यह दिखा सके कि किसी एक विशेष वेरायटी को मदद चाहिए तो-यह मदद उन सभी उत्पादकों को देनी पड़ेगी चाहे उसे कहीं और इससे अच्छी आमदनी हुई हो। बिना किसी कानूनी मदद के हॉप्स की खेती में प्रयुक्त खेत को-नियन्त्रण करने के लिए यूरोपियन समुदाय ने अतिरिक्त फसल होने की सूरत में (Grubbing) के लिए आर्थिक मदद रखी है लेकिन ज्यों ही मार्केट दोबारा उठता है तो उसे दोबारा पौधारोपण करने से नहीं रोक सकती।

हॉप्स पैदा करने वाले साम्यवादी देशों में मार्केटिंग प्रबन्ध राजकीय नियन्त्रण के अन्तर्गत एकीकृत होती है लेकिन जो भी अन्दरूनी प्रबन्ध हो, सभी उत्पादकों को, जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का संबंध हैं, फ्री-मार्केट में मुकाबला करना पड़ता है। इसमें सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि खरीदार इस बात से सहमत हों कि हॉप्स उसी किस्म का हो जो कॉन्ट्रेक्ट में दिखाया गया है व गुणवत्ता में लेने योग्य हो।

अब EEC देशों में यह ज़रूरी समझा जा रहा है कि जो भी उत्पादित हॉप्स की काऊंसिल नियमों के अनुसार प्रमाणित किया गया हो, इसमें हर एक कन्साईनमेन्ट के साथ उत्पादक अपना नाम, पता, उत्पादन वर्ष, किस्म, रजिस्टर्ड नम्बर और जिस खेत में पैदा किया गया हो उसका रजिस्टर्ड न० व कन्साईनमेन्ट में कितने पैकेजिज़ हैं, दिखाएं और लिखें। हॉप्स की सप्लाई बंद कागज़ या बेतज और सही तोर पर "तैयार हॉप्स" या "कच्चा हॉप्स" और "बीजयुक्त" "बीज रहित" का मार्का लगा हो। इंग्लैंड में सुखाना व पैकेजिंग हमेशा फार्म में ही किया जाता है इसलिए यहां के हॉप्स पर "तैयार हॉप्स" मार्का लगा होता है। यूरोपीय महाद्वीप में ज़्यादातर हॉप्स की तैयारी व्यापारी के गोदाम में होती है इस तरह वह "कच्चा हॉप्स" के मार्का में सप्लाई होता है।

कन्साईनमेंटस हमेशा सेमपल्ड होने चाहिए और सेम्पलों का नीचे दिए गए जरूरतों के अनुसार परीक्षण करना चाहिए।:-

(i) नमी की मात्रा; नमी की मात्रा 12% से ज्यादा नहीं बढ़नी चाहिए लेकिन अगर यह 12-14% के बीच रहता है तो हॉप्स को प्रमाणित कर सकते हैं और Unprepared Hops का मार्का लगेगा।

(ii) पत्ते व तना; (यह पत्तों के अवशेष और तनों के टुकड़ो के रूप में परिभाषित होता है और कॉन स्ट्रीग 2.5 Cm या लम्बा) अधिकतम स्वीकार्य ६ प्रतिशत (भार द्वारा)।

(iii) हॉप वैस्ट (कॉन के अलावा कोई भी छोटे पार्टिकल्ज़ जो मशीन हारवेस्टिंग के कारण और देखने में काले और गहरे रंग के बीच परिभाषित होता है। अधिकतम 3 प्रतिशत।

((iv) बीज की मात्रा; बीज रहित हॉप्स की मात्रा २ प्रतिशत (भार द्वारा) से ज्यादा न हो। और हॉप्स 2 प्रतिशत से ज्यादा बीजयुक्त हो तो इसे "बीजयुक्त" मार्का व प्रमाणपत्र दिया जाना चाहिए।

वह हॉप्स जो इन ज़रूरतों को पूरा नहीं करता बेचा नहीं जाना चाहिए लेकिन इसे उत्पादक के पास दुबारा सुखाने, साफ करने के लिए वापिस किया जा सकता है और इसे सर्टीफिकेशन के लिए दोबारा पेश किया जा सकता है। यू० एस० ए० में भी हॉप्स को निरीक्षण से गुज़रना पड़ता है लेकिन यहां पर किसे किस स्थिति में बेचा जाए, के लिए कोई सख्त सीमा नहीं है। अपितु यहां पर एक प्रक्रिया है जहां हॉप्स के कॉन्ट्रेक्ट कीमत को कम बीज, पत्ता और तने की मात्रा के प्रीमियम द्वारा एड्जस्ट किया जाता है। जो हॉप्स 3% भार द्वारा, से कम हो तो बीजरहित है, और जो 3-6% को सेमी बीजरहित और 6% से ऊपर वाला बीजयुक्त में आता है। लेकिन पत्ते व तने 15% से ज्यादा होते हैं तो वह हॉप्स बेचने लायक नहीं माना जाता है।

EEC के नियन्त्रण के अन्तर्गत हॉप्स का Blending अस्वीकार्य है (पाऊडर व एक्सट्रेक्ट में प्रयुक्त होने के अलावा) जब तक वह एक ही फसल, एक ही उत्पादन क्षेत्र व एक ही किस्म के हों, तब blending को प्रमाणीकरण अफसर की देखरेख में किया जा सकता है। पाऊडर व एक्सट्रेक्ट को तैयार करने के लिए अलग किस्म व अलग उत्पादन क्षेत्र, मगर कम्युनिटी के अन्दर के उत्पाद को blend किया जा सकता है बशर्ते इसका हवाला प्रमाणपत्र में दर्ज हो।

इस तरह blending पर खासकर सुगन्धित हॉप के लिए नियंत्रण महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस खास प्रकार के हॉप्स को पाने के लिए ब्रीवर काफी ज्यादा कीमत अदा करता है। कड़वे हॉप को खरीदने वाले ब्रीवर ज्यादातर इसके मूल के बारे में ज्यादा स्थान नहीं देते और उनके अनुबन्ध की शर्तें ज्यादातर कीमत प्रति किलो= एल्फा-ऐसिड का भार से परिभाषित होता है जो आमतौर पर न्यूनतम एल्फा-एसिड की दी गई मात्रा होती है। आमतौर पर पाऊडर व एक्सट्रेक्ट की दिखाए गए एल्फा-एसिड मात्रा में ही सप्लाई होती है और इसे पाने के लिए blending बहुत ज़रूरी है।

सन् 1960 में ऊँचे एल्फा-एसिड मात्रा वाले हॉप्स की बढ़ी हुई ज़रूरत के परिणाम स्वरूप इस तरह के कलटीवार बहुतायत में लगाए गए जिससे सुगन्धित हॉप्स के बदले में ऊँचे एल्फा-एसिड वाले पौधे जो उपलब्ध थे, उत्पादकों द्वारा हाथों हाथ लिये गये। किस्मों में बदलाव व ब्रीऊइंग के नए तकनीक अपनाने पर जहां एल्फा-एसिड को बहुत उपयुक्त तरीके से इस तरह उपयोग में लाया कि मिल कर दोनों में कठिनाई बहुत बढ़ गयी है। इस तरह से अब कड़वा हॉप अधिकतम ज़रूरत से ज़्यादा पड़ा है और इसका बाज़ार ठंडा पड़ा है जबकि सुगन्धित किस्मों की माँग स्फूर्तिपूर्ण है। न सिर्फ सुगन्धित हॉप्स की मूल कीमत अधिक है बल्कि कम मात्रा में एल्फा-एसिड होने से इसकी मात्रा उसी कड़वे हॉप्स के बीयर के बराबर लाने के लिए 2 या 3 गुना की मात्रा में प्रयुक्त होता है। हालांकि संरक्षात्मक ब्रीवरज़ बिना किसी संकोच के उन्हें इस्तेमाल करेंगे; उसे एल्फा-एसिड कल्टीवारज़ की तरफ बदलाव निस्सन्देह चलता रहेगा। खासकर जब प्रजनन लगातार इस के सुगंध में सुधार कर रहा है। बहुत अधिक कड़वा हॉप तैयार अवस्था में ही इस्तेमाल होगा और उत्पाद में एक पहले से निर्धारित एल्फा-एसिड के स्तर को पाने के लिए उत्पादक उन हॉप्स को जो वांछित स्तर तक सम्मिश्रित हो सके कहीं से भी प्राप्त करेगा।

ब्रिऊइंग वाणिज्य पहले ही विलय और अधिग्रहण के दौर से गुज़र चुका है जिससे यह उद्योग बहुतायत में कुछ हाथों मे केन्द्रित हो चुका है और इसमें कोई शक नहीं कि यह सिल-सिला चलता रहेगा। इससे हॉप्स की खरीददारी कुछ हाथों में केन्द्रित होगी, जिसका मार्केट पर बहुत गहरा असर होगा, ज़ोकि बड़े पैमाने के खरीददारी के लिए एक मापदंड बनेगा। हॉप्स उत्पादक के पास उसके जरूरत को पूरा करने के अलावा कोई चारा नहीं होगा। और बचे हुए छोटे ब्रीवर का इसमें कोई दखल नहीं होगा अपितु उन्हें भी इसी मापदण्ड को अपनाना पड़ेगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तकाल में जो बहुत सारी हॉप्स की किस्में उत्पादित होती थी उनमें सन् 1950 ई० तक पाँच या छः खास किस्में शेष रह गई हैं। ब्रीवर व उत्पादक की बदलती हुई आवश्यकताओं को देखते हुए अधिकतम प्रजनन कार्यकलाप से पाए जाने वाले हॉप्स में नवीकृत विविधता आई है। और यह आवश्यक है कि यह चलते रहें। ज़्यादा समानता इस उद्योग को फिर किसी दूसरी बीमारी के कगार पर ले जाएगा जैसा कि सन् 1920 ई० में डाऊनी माईलड्यू और सन् 1960 ई० में थोड़ी कम मात्रा में बरटी -सीलियम विल्ट पहले ही कर चुके हैं। ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए कि मुख्य हॉप्स के खरीददार मिश्रित विकल्प किस्मों को अलग अलग- देशों में खरीदेंगे ताकि फसल के अन्दर ज़्यादा से ज़्यादा जैविक विषमता को बनाए रखा जा सके जोकि भविष्य के सप्लाई को प्रभावित करने वाले वज़हों से इस उद्योग को बचाता रहे।

हॉप्स आर० ए० नीव चैपमैन और हाल भारत

पुस्तक प्राप्ती के लिए पताः-

B.T Publication Pvt. Ltd.
13, Daryaganj, New Delhi-110002
R.A. Neve : Hops

@ Pound 35.00	=	*1729.00*
Less 10y.	=	*172.90*
		1556.10
Postage	=	*11.90*
Rs.		*1568.00*

FOR ALL KINDS OF

PRINTING SERVICES

Sidhartha Printing Press
Opp. Darjeeling Cafe
Model Town, Manali 175131

WE SELL QUALITY PRODUCTS

GEPAN STORES
THE MALL MANALI-175131 Ph. : 2234

It is where you stay

ZARIM RESORTS (P) LTD.

CIRCUIT HOUSE ROAD,
THE MALL, MANALI H.P. 175131 Ph. 2225, 2345

INSTITUTION IS ABOVE ALL

PH. : 84287 - 84351
GRAMS : GOLDHOUSE

ESTD. : 1987
Regd. No. 7310

Golden Forests (INDIA) LIMITED

AN AGRO FORESTRY CONCERN
(A Public Limited Company)
1994 Year of Consolidation
REGD. & H.O. : S.C.O. 832-33-34, GOLDEN COMPLEX
MANIMAJRA (U.T.) CHANDIGARH-160 101

Invest with an organisation which ensures
"MATURITY"

मुख्य विशेषताएँ

(क) सुदृढ़ सुरक्षित निवेश
(ख) निःशुल्क दुर्घटना बीमा
(ग) लोगों के पैसे का ज़ब्तीकरण नहीं
(घ) निवेश की गई राशि पर ऋण सुविधा
(ड.) देय तिथि से पहले आशिंक अदायगी
(च) राशि के हस्तांतरण की सुविधा
(छ) मार्किट में रोजगार पैदा करना